निवेदन

श्रीमान् महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कृत श्री नवपद पूजा प्रत्येक जैन मन्दिर में कराई जाती है और अधिक चाव से बहुमानपूर्वक इस पूजा का विधान कराया जाता है। पूजा–प्रकाण्ड विद्वान महापुरुष रचित होने से तत्त्व विशेष भरा हुवा है। आपने श्री श्रीपालजी महाराज के रास की रचना की जिसके उत्तरिय विभाग में पूजा की ढालें हैं। जिनका रहस्य भाषानुवाद रास में प्रतिपादित है। पूजा पढाते समय भावार्थ समझते जांय तो विशेष जानकारी होती है, तत्त्व चिंतवन होता है और भावना में वृद्धि होती है। आत्मा निर्मल बनती है। इस पूजा का भावार्थ सेंतीस वर्ष पहले आत्मानंद सभा भावनगर की ओर से छपा था और रास तो कई संस्थाओं की ओर से छपे हैं, उन्हींके आधार पर भाषावचनिका हिन्दी में लिखने का प्रयास किया है अतः इस प्रकाशन का श्रेय तो पूर्व में प्रकाशित करने वालों को ही है, मैंने तो सम्पादन किया है विशेष विवेचन भी प्राचीन ग्रंथों से उद्धृत किया है।

इस पूजा का भाषानुवाद लिखने से पहिले श्रीमान् परम पूज्य शासनरत्न आचार्य देवेश श्रीविजयप्रतापसूरीश्वरजी साहब से प्रार्थना की थी आपने विशेष उत्साहित कर आशीर्वाद दियो अतः एक महान पुरुष की कृति का भावार्थ प्रकाशित कराया है। श्रद्धेय परम पूज्य महामहोपाध्यायजी की अनेक कृतियां सर्व साधारण और विद्वानगण के लिए अति उपयोगी है,

आपकी की हुई साधारण रचना भी महत्त्वपूर्ण है. जैन साहित्य में संस्कृत रचना पर से रास--कविता भाषानुवाद बहुत सी रचना का प्रकाशन हुवा है, किन्तु इन महामना महात्मा कृत द्रव्य गुण पर्याय रास उपर से संस्कृत टीका बनी है। साहित्य में यह पहला उदाहरण है।

इस पूजा संकलन में आचार्यों की कृति का समन्वय इस प्रकार है कि—

(१) भुजङ्गप्रयातवृत--श्री ज्ञानविमलसूरिजी कृत
(२) मालिनीवृत--श्री ज्ञानविमलसूरिजी कृत
(३) उलाला की देशी--श्रीमद् देवचंदजी महाराज कृत
(४) पूजा ढाल--श्री महामहोपाध्यायजी कृत
(५) अंतिम ढाल--श्री उपाध्यायजी महाराज कृत
(६) कलश--श्रीमद् देवचंदजी महाराज कृत

इसके अतिरिक्त इन्द्रव्रजावृत वाले, श्लोक श्रीपाल कहा श्लोक ५६४ से ५७२ तक के और उपजातिवृत अर्ध श्लोक भी सिरिपाल कहा से उद्धृत कर पूजा को सर्वाङ्ग पूर्ण बना दी है।

पूजा का भावार्थ बहुत मनन करने योग्य है। इस तरह पूर्व पुरुषों की कृति पूर्व प्रकाशकों के आभार सहित सेवा में प्रस्तुत है।

छोटी सादडी (मेवाड)
२०१७ महासुदी १५

संघ सेवक —
चंदनमल नागोरी

परम पूज्य आचार्य देवेश

श्री विजय प्रताप सूरीश्वरजी महाराज
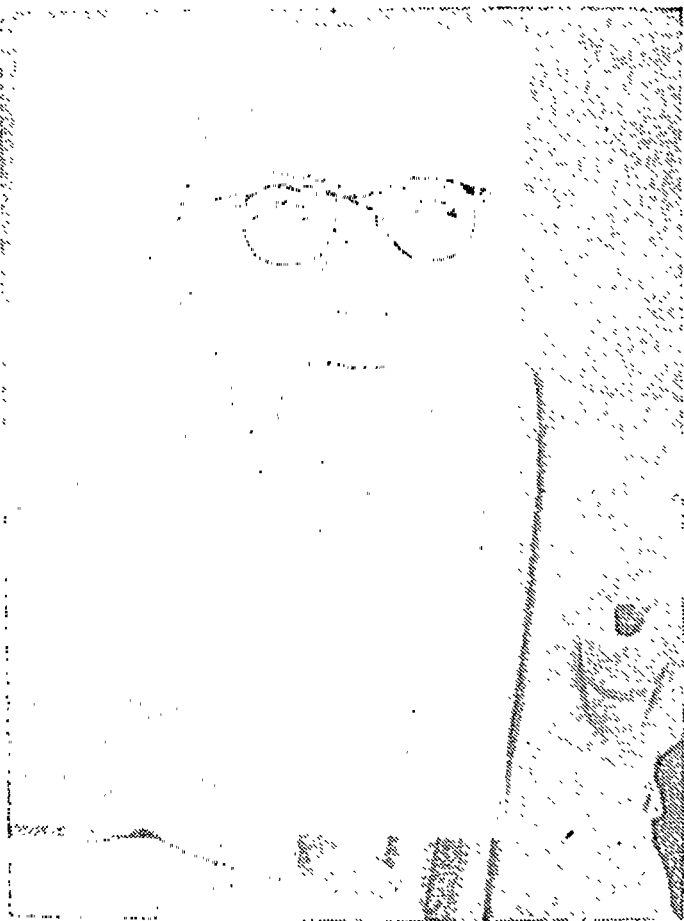
श्रीमान् परम पूज्य शासन प्रभावक परमोपकारी आचार्य देवेश श्री विजय प्रताप सूरीश्वरजी साहब के कर कमलों में समर्पित

महामना! गुरुदेव! आपके उपदेश से कई संस्थाओं द्वारा अनेक प्रकाशन हुए हैं, कई संस्थाएं, पाठशाला व पुस्तकालय भी स्थापित हुए हैं और अनेक प्रतिष्ठा कार्य अंजनशलाका उपधान आदि महान कार्य भी आपकी निश्रामें हुए हैं, शासन हित में आप विशेष लक्ष्य देते हैं, और वात्सल्य भाव के तो आप भंडार हैं, सर्वसाधारण पर भी आप की कृपा रहती है। श्रीमान् महान उपकारी विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज के उपदेश से जो संघ हित के लिये महान कार्य हो रहे हैं वह सब आपकी अनुपम कृपा का फल है। इस प्रकार की गुण संकलना के कारण यह आवृत्ति समर्पित है सो स्वीकार कर उपकृत करिएगा।

श्रमणोपासक--सेवक

चन्दनमल नागोरी

॥ अनुक्रमणिका ॥

॥ वीराय नित्यं नमः ॥

महामहोपाध्याय

॥ श्री यशोविजय जी महाराज कृत ॥

॥ नवपद पूजा ॥

॥ प्रथम अरिहंत पद पूजा ॥

॥ काव्य उपजाति वृत्तम ॥

उप्पन्नसन्नाणमहोमयाणं,
सप्पाडिहेरासणसंठियाणं ॥
सद्देसणाणंदिय सज्जणाणं,
नमो नमो होउ सया जिणाणं ॥१॥

॥ भुजङ्गप्रयातवृत्तम ॥

नमोऽनंतसंत प्रमोद प्रदान !
प्रधानाय भव्यात्मने भास्वताय ॥
थया जेहना ध्यान थी सौख्य भाजा,
सदासिद्धचक्राय श्रीपालराजा ॥१॥
कर्या कर्म दुर्मर्म चकचूर जेणे,
भलां भव्य नवपद ध्यानेन तेणे ॥

करो पूजना भव्य भावे त्रिकालें,
सदा वासियो आतमा तेण काले ॥२॥
जिके तीर्थंकर कर्म उदये करीने,
दीये देशना भव्य ने हित धरीने ॥
सदा आठमहापाडिहारें समेता,
सुरेशें नरेशें स्तव्या ब्रह्मपुत्ता ॥३॥
कर्यां घातियां कर्म चारे अलग्गां।
भवोपग्रहो चार जे छे विलग्गाँ ॥
जगत् पंच कल्याणक सौख्य पामे।
नमो तेहे तीर्थं करा मोक्ष कामे ॥४॥

॥ ढाल उल्लाला की देशी ॥

तीर्थपति अरिहा नमुं, धर्म धुरंधर धीरोजी ।
देशना अमृत वरसतां, निज वीरज वड़ वीरोजी ।१।तीर्थ
वर अखय निर्मल ज्ञान भासन, सर्व भाव प्रकाशता
निज शुद्ध श्रद्धा आत्म भावे, चरण थिरता वासता ।१।
निज नाम कर्म प्रभाव अतिशय प्रातिहारज शोभता,
जगजंतु करुणावंत भगवंत भविक जनने क्षोभता ।२।

॥ पूजा ढाल श्रीपालरास की देशी ॥

त्रीजे भव वर स्थानक तपकरी, जेणे बांध्युं जिन नाम। चौसठ्ठ इन्द्रे पुजित जे जिन कीजे तास प्रणाम रे ॥ भविका ॥ सिद्धचक्र पद वंदो जिम चिर काले नंदो रे भविका, सिद्ध० ए देशी ॥ जेहनें होय कल्याणक दिवसें नरके पण अजवालुँ ॥ सकल अधिक गुण अतिशय धारी, ते जिन नमों अघटालुं रे, भविका ॥२॥ जे तिहुं नाण समग्ग उप्पन्ना, भोग करम क्षीण जाणी। लेई दीक्षा शिक्षा दीयें जनने, ते नमीये जिन नाणी रे भविका॥३॥ महागोप महामाहण कहिये, निर्यामक सत्थवाह, ऊपमा एहवी जेहने छाजे, ते जिन नमिये उत्साह रे -भविका ।४।आठ प्रातिहारज जस छाजे, पात्रींस गुण युतवाणी। जे प्रतिबोध करे जग जनने, ते जिन्न नमिये प्राणी रे-भविका ॥५॥सि॥

॥ ढाल ॥

अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह गुण पज्जायरे।

करो पूजना भव्य भावे त्रिकालें,
सदा वासियो आतमा तेण काले ॥२॥
जिके तीर्थंकर कर्म उदये करीनें,
दीये देशना भव्य ने हित धरीने ॥
सदा आठमहापाडिहारें समेता,
सुरेशें नरेशें स्तव्या ब्रह्मपुत्ता ॥३॥
कर्यां घातियां कर्म चारे अलग्गां।
भवोपग्रहो चार जे छे विलग्गाँ ॥
जगत् पंच कल्याणक सौख्य पामे।
नमो तेह तीर्थं करा मोक्ष कामे ॥४॥

॥ ढाल उल्लाला की देशी ॥

तीर्थपति अरिहा नमुं, धर्म धुरंधर धीरोजी ।
देशना अमृत वरसतां, निज वीरज वड़ वीरोजी ।१।तो
वर अखय निर्मल ज्ञान भासन, सर्व भाव प्रकाशता
निज शुद्ध श्रद्धा आत्म भावे, चरण थिरता वासता ।१
निज नाम कर्म प्रभाव अतिशय प्रतिहारज शोभता,
जगजंतु करुणावंत भगवंत भविक जनने क्षोभता ।२

॥ पूजा ढाल श्रीपालरास की देशी ॥

त्रीजे भव वर स्थानक तपकरी, जेणे बांध्युं जिन नाम। चौसठ्ठ इन्द्रे पुजित जे जिन कीजे तास प्रणाम रे ॥ भविका ॥ सिद्धचक्र पद वंदो जिम चिर काले नंदो रे भविका, सिद्ध० ए देशी ॥ जेहने होय कल्याणक दिवसें नरके पण अजवालुँ ॥ सकल अधिक गुण अतिशय धारी, ते जिन नमों अघटालुं रे, भविका ॥२॥ जे तिहुं नाण समग्ग उप्पन्ना, भोग करम क्षीण जाणी। लेई दीक्षा शिक्षा दोये जनने, ते नमीये जिन नाणी रे भविका॥३॥ महागोप महामाहण कहिये, निर्यामक सत्थवाह, ऊपमा एहवी जेहने छाजे, ते जिन नमिये उत्साह रे -भविका ।४।आठ प्रातिहारज जस छाजे, पात्रीस गुण युतवाणी । जे प्रतिबोध करे जग जनने, ते जिन नमिये प्राणी रे-भविका ॥५॥सि॥

॥ ढाल ॥

अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह गुण पज्जायरे ।

भेद छेद करी आतमा, अरिहंत रुपो थायरे ॥१॥
वीर जिनेश्वर उपदिशे, सांभलजो चित लाईरे।
आतम ध्याने आतमा, ऋद्धि मले सवि आई रे।२।वीर।

॥ अंत काव्य-इन्द्रवज्रावृत्तम ॥

जियंतरंगारिगणे सुनाणे सप्पाडिहेराइसयप्पहाणे।
संदेहसंदोहरयं हरंते, झाएह निच्चंपि जिणेरहंते ।१।

॥ अथ काव्यं–द्रुत विलंवितवृत्तम् ॥

विमल केवल भासनभास्करं,
जगति जंतु महोदय कारणं ।
जिनवरं बहुमानजलौघतः
शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ॥१॥

(उपर्युक्त काव्य प्रत्येक पूजा में कहना)

स्नात्र करतां जगद्गुरु शरीरे,
सकल देवे विमल कलश नीरे ।
आपणां कर्म मल्ल दूर कीधां,
तेणे ते विबुध ग्रंथे प्रसिद्धा ॥१।

हर्षधरी अप्सरावृन्द आवे,
स्नात्र करी एम आशीष पावे ।
जिहां लगे सुरगिरि जंबू दीवो,
अमतणां नाथ देवाधिदेवो ॥२॥

॥ प्रथम पूजा समाप्त ॥

॥ काव्यार्थ ॥

केवलज्ञान जिन्हें प्राप्त हो गया है, ऐसे ज्ञानरूपी तेजवान् होते हुवे प्रातिहार्य सहित सिंहासन पर विराजमान होकर, उत्तम देशना देकर जिन्होंने मनुष्यों को आनन्दित किया है, ऐसे अरिहंत भगवंत को सदा नमस्कार हो। जिनके आठ प्रातिहार्य (१) अशोक वृक्ष (२) पुष्पवृष्टि (३) दिव्य ध्वनि (४) चामर (५) सिंहासन (६) भामंडल (७) दुन्दुभि (८) तीन छत्र, प्रत्यक्ष दीखते हैं।

॥ भुजंग प्रयात वृत्तम अर्थ ॥

उन सिद्धचक्रजी को नमस्कार हो, जो भव्यात्माओं को अनंत और प्रत्यक्ष हर्ष को प्राप्त करवाने में मुख्य साधन रूप हैं, और जिनका ध्यान करने से महाराज श्रीपालजी ने सुख प्राप्त किया है ॥१॥

उत्तम और सुन्दर श्री नवपदजी के ध्यान से जिन्होंने कर्म की खराव चेष्टाओं को चूर्ण कर दिया है तथा तीनकाल में जिन्होंने सुन्दर परिणाम पूर्वक नवपदजी की पूजा की है और जिनकी आत्मा वासित नवपद में तन्मय हो रही है ॥२॥

जो तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से भव्यात्माओं का हित हृदय में धारण करके देशना देते हैं, जो सदा आठ महा प्रातिहार्य सहित हैं और केवलज्ञान से पवित्र हैं और जिनकी पूजा स्तुति इन्द्र व चक्रवर्त्तियों ने की है ॥३॥

निज की आत्मा से चार घाती कर्मों को जिन्होंने दूर कर दिया है अर्थात् (१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय (३) मोहनीय (४) और अंतराय कर्म का आवरण जिनका नाश हो गया है, और भव पर्यन्त रहने वाले चार अघाती कर्म जिनमें विद्यमान होते हैं, (१) नाम (२) गोत्र (३) वेदनीय (४) और आयु ये चारों तो मोक्ष प्राप्त होने तक रहते हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध शरीर के साथ है। ऐसे जिन भगवंत के पाँचों कल्याणकों (१) च्यवन (२) जन्म (३) दीक्षा (४) केवलज्ञान और (५) मोक्ष, के समय में जगत् जीव शांति पाते हैं, इसलिये ऐसे तीर्थंकर भगवंत को मोक्ष की इच्छा सहित नमस्कार हो।

यहाँ पर एक वात खास यह जानने की है कि मोक्ष की इच्छा का शब्द इसलिये कहा है कि लोकोत्तर देवों की आराधना का उद्देश्य तो हमेशा मोक्ष का ही होता है और लौकिक देवों की आराधना के अनेक सांसारिक उद्देश्य होते हैं ॥४॥

॥ उल्लालाढालार्थ ॥

तीर्थ की स्थापना करने वाले और जिन्होंने चतुर्विध संघ की स्थापना की है, जिन्होंने दान, शियल, तप व भाव की प्ररूपणा की है और जो धीरजवान् गंभीर हैं, जिन्होंने अमृत रूप देशना की वर्षा वर्षाई है और जो अपनी शक्ति से कर्मों का छेद करने में पुष्ट हैं, ऐसे श्री अरिहंत भगवान को वन्दन करता हूँ ॥१॥

उत्तम निर्मल और अक्षय ज्ञान के प्रकाश से जो सर्व पदार्थों के रहस्य को प्रगट करते हैं, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल रूप षड् द्रव्यों का जिन्होंने स्वरूप बताया हैं, आत्मभाव में जिनकी शुद्ध श्रद्धा है, स्थिरतारूप चारित्र में जो तन्मय हैं, आत्मरमणता में कि जिसमें केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद 'यथाख्यात चारित्र' होता है और वह आत्म स्थिरता रूप होता है, जिसमें लीन हैं, तीर्थंकर गोत्र कर्म के प्रभाव से जो ३४ अतिशय व आठ प्रातिहार्य से सुशोभित हैं, जगत् जीवों के प्रति जो अनुकंपा वाले हैं जो भगवंत हैं और भव्यात्माओं को आश्चर्य उत्पन्न कराते हैं।

प्रसंगोचित यहां ३४ अतिशयों के नाम जानना चाहिये और वे इस प्रकार हैं:—

मूल चार अतिशय (१) शरीर सुगंध युक्त परसेवे–पसीने

रहित होता है (२) रुधिर-मांस-गाय के दूध समान होते हैं (३) आहार-निहार चर्म चक्षुवान नहीं देख सकता (४) श्वासोश्वास में कमल जैसी सुगंध होती है।

१९ देवकृत अतिशय

(१) आकाश में धर्मचक्र होता है (२) चार जोड़ी चंवर होते रहते हैं (३) स्फटिक रत्न का सिंहासन होता है (४) तीन छत्र प्रत्येक दिशा में होते हैं (५) रत्नमय धर्मध्वज होता है (६) नव सुवर्ण कमल (७) मणी सुवर्ण और चांदी के तीन गढ़ (८) तीन प्रतिबिंब से चतुर्मुखता (९) अशोक वृक्ष (१०) कांटे अधोमुख (११) वृक्ष प्रणाम करें (१२) देव दुंदुभि (१३) योजन प्रमाण वायु की अनुकूलता (१४) पक्षी प्रदक्षिणा दिया करें (१५) सुगंध जल वृष्टि हो (१६) घुटने तक पुष्प वृष्टि (१७) सर्व ऋतु अनुकूलता (१८) कम से कम क्रोड देवताओं की हाजरी (१९) संयम लेने बाद केश, डाढ़ी व नख का न वढ़ना।

११ अतिशय केवलज्ञान के बाद

(१) योजन प्रमाण समवसरण में क्रोडाक्रोड देवों का समावेश (२) दो सो कोस तक रोग का अभाव (३) वैरभाव का नाश (४) महामारी का अभाव (५) अतिवृष्टि का अभाव (६) अनावृष्टि का अभाव (७) दुष्काल का अभाव (८) स्व चक्र पर चक्र

के भय का अभाव (९) अपनी २ भाषा में सबकी देशना को समझना (१०) एक योजन तक वाणी का सुनने में आना (११) प्रभु के मस्तक पीछे भामंडल का रहना।

ऐसे जिनेश्वर देव जगत के जीवों के प्रति अनुकम्पा वाले हैं अर्थात करुणा, कोमलता और तीक्ष्णता यह तीनों ललित त्रिभंगी भगवान में एक साथ ही रहती हैं। पापकर्म में रत जीवों की तरफ दयावान अन्तःकरण हो, मोक्षमार्गी जीवों की ओर कोमलता हो तथा कर्म की प्रचण्ड सामर्थ्यता तरफ तीक्ष्णता हो इस प्रकार भगवंत भव्य जीवों को आश्चर्य उत्पन्न कराते हैं।

॥ पूजा ढाल का अर्थ ॥

पहले के तीसरे भव में वीश स्थानक तप करके तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया है। वीस स्थानक में (१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) प्रवचन (४) आचार्य (५) स्थविर (६) पाठक (७) साधु (८) ज्ञान (९) दर्शन (१०) विनय (११) चारित्र (१२) ब्रह्मचर्य (१३) क्रिया (१४) तप (१५) दान (१६) वैयावच्च (१७) समाधि (१८) अभिनवज्ञान (१९) श्रुत (२०) तीर्थ ये वीश पद स्थानक के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिसका मतलब यह है कि आत्मा इन स्थानों में स्थिर होकर निज के स्वरूप की साधना करता है। इस तरह की साधना से तीर्थंकर नाम गोत्र उपार्जन किया है और जिनके चरणों की पूजा चौंसठ

इन्द्रों ने भुवनपति के २०, व्यंतर के ३२, ज्योतिषी के २, बारह देवलोक के १० कुल ६४ ने पूजा की है ऐसे जिन भगवन्त को हे भव्य प्राणी प्रणाम करो। सिद्ध चक्र के प्रथम पद को वन्दन करो जिससे बहुत समय तक आनन्द प्राप्त होगा ॥१॥ ऐसे जिन भगवन्त के कल्याणक के दिन सातों नर्क में अंतर मुहुर्त्त पर्यन्त प्रकाश को किरणें फैल जाती हैं ऐसे सबसे अधिक गुण वाले जिनकी आत्मा में अनन्त गुण प्रगट हुवे हैं अतिशयवान् जिन भगवन्त को नमन वन्दन करके पापों को दूर करो ॥ भगवान तीन ज्ञान सहित जन्मे हैं, गर्भ में भी मतिश्रुति व अवधि ज्ञान होता है। जिन्होंने भोगावली कर्म को क्षीण होगया जानकर दीक्षा अंगीकार की है, तीर्थंकर भगवान इस कर्म को रोग की तरह भोगते हैं और ऐसे भोगरुप रोग का निवारण करते हुवे यह जानते हैं कि यह अवश्य भोगना पड़ेगा। जिनके भोगे बाद दीक्षा ले, केवल ज्ञान प्राप्त कर प्राणियों को उपदेश देते हैं, ऐसे जिनेश्वर प्रभु को मेरा नमस्कार हो ॥३॥ महागोप, और महामाहण कहते महागोप का मतलब तो गायों का ग्वाल होता है जिसको घटाते कहा है कि जगत के अज्ञानी जीवरूप गायों को मोक्ष मार्ग में ले जाने वाले उत्तम ग्वाल हैं। मा-हण-कहते हैं—या-नहीं और हण-हिंसा यानि हिंसा मत करो अर्थात अहिंसा के सिद्धान्त का सम्पूर्णतया प्रचार करने वाले मा-हण कहे जाते हैं और निर्यामक से तात्पर्य है संसाररूपी समुद्र से जीवों को परले पार ले जाने वाले, सार्थवाह का आशय है चोरासी लाख

जीवायोनि रूप अटवी में भूली पड़ी हुई आत्माओं को मुक्ति नगर में पहुँचाने वाले सार्थवाह हैं। इस तरह की उपमा जिनमें घटित होती है ऐसे जिन भगवान को उत्साह पूर्वक नमन करो ॥४॥

जिनको आठ प्रतिहार्य शोभा देते हैं, पेंतीस गुण सहित जिनकी वाणी है अर्थात केवल ज्ञान होने के वाद वचनातिशय जिनका प्रगट होता है, जो इस प्रकार है कि (१) सर्व स्थान पर समझ में आ सके (२) योजन प्रमाण सुनने में आवे (३) प्रौढ़ (४) मेघ जैसी गंभीर (५) शब्द से स्पष्ट (६) संतोषकारक (७) प्रत्येक मनुष्य खुद के लिये समझे (८) पुष्ट अर्थ वाली (९) पूर्वापर विरोध रहित (१०) महापुरुषों के योग्य (११) शंका रहित (१२) दूषण रहित अर्थ वाली (१३) कठिन विषय को सरल वनाने वाली (१४) समयानुकूल (१५) षड् द्रव्य नव तत्त्व की पुष्टि करने वाली (१६) प्रयोजन वाली (१७) पद रचना सहित (१८) पटुतावाली (१९) मधुर (२०) दूसरों के मर्म को प्रकाश में नहीं लाने वाली (२१) धर्म-अर्थ प्रतिवद्ध (२२) दीपक के समान प्रकाशार्थ वाली (२३) परनिन्दा व आत्मश्लाघा रहित (२४) व्याकरण के नियम सहित (२५) आश्चर्यकारी (२६) वक्ता के गुणों की ख्याति कराने वाली (२७) धैर्य वाली (२८) विलम्ब रहित (२९) भ्रान्ति रहित (३०) सव अपनी २ भाषा में समझ सकें (३१) विशिष्ट वुद्धि उत्पादक (३२) पद के अनेक अर्थ वसाने वाली (३३) शौर्यवाली (३४) पुनरुक्ति दोष रहित (३५) सुनने वाले को खेद नहीं

होता । इस प्रकार की वाणी से जगत के जीवों को प्रतिबोध करते हैं ऐसे जिनराज को हे प्राणियों तुम नमस्कार करो ॥ वन्दन करो ॥५॥

अथ ढ़ालार्थ

द्रव्य गुण और पर्याय सहित अरिहन्त पद का ध्यान करते आत्मा भेद का छेद करके अरिहन्त रूप हो पाता है।

(१) द्रव्य से अरिहंत पद का ध्यान इस तरह होता है कि अरिहन्त भगवान का और हमारा आत्म द्रव्य एकसा है, दोनों के आत्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं, सत्तारूप भी एक सरीखे हैं, लेकिन भगवन्त ने व्यक्तिरूप आत्मा को निर्मल कर लिया है, इसलिये अपन भी तदनुसार प्रयत्न पूर्वक वर्तन करें तो हमारा आत्मा भी उन्हीं के समान हो सकता है।

(२) गुण से अरिहन्त पद का ध्यान इस तरह से होता है कि अरिहन्त की आत्मा में प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुण होते हैं, लेकिन भगवन्त ने उन गुणों का विकास करके गुणों के साथ तन्मयता प्राप्त की है, और हमने विभाव दशा में रहकर भी उन गुणों की अपेक्षा की है, इसलिये अब भगवन्त का अनुकरण करके गुणों का विकास करके भगवंत जैसे हो सकते हैं।

(३) 'पर्याय' से अरिहंत पद का ध्यान इस तरह होता कि अरिहन्त भगवन्त का ज्ञान हमेशा उपयोग मय होता है,

घटादि वस्तुएँ पृथक् २ रूप से परिणमन होती हैं जिससे उपयोग बदलता रहता है, लेकिन ज्ञानादि गुण तो अविच्छिन्न रहते हैं और अपनी आत्मा भी अलग २ स्वरूप का परिणमन घटात्मा-पटात्मा की तरह प्राप्त करता है परन्तु आत्मा के गुण एक तरफ़ नहीं आते जिससे पर्याय अनित्य होने पर भी आत्मा नित्य है और इस तरफ़ लक्ष देकर हम भी अरिहंतात्मा के बराबर हो सकते हैं।

श्री वीर प्रभु के उपदेश अनुसार सबको सावधान होकर श्रवण करना आत्मा के ध्यान से आत्मा की सर्व संपत्ति प्राप्त हो सकती है ॥१॥ आत्मा की लक्ष्मी ज्ञान दर्शन चारित्र और वीर्यरूप अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी मिल जाती है।

अंतिम काव्यार्थ

निज के अंतरंग शत्रुओं के समूह को जिन्होंने जीत लिया है और उत्तम ज्ञानवंत सत्प्रतिहार्यादि अतिशय से श्रेष्ठ-शंका के समूहरूप रज को दूर करने वाले अरिहंत भगवन्त का नित्य प्रति ध्यान करना चाहिये।

प्रथम पूजार्थ समाप्त

द्वितीय सिद्धपद-पूजा

॥ आद्य काव्यं इन्द्रवज्रावृत्तम ॥

सिद्धाणमाणंदरमालयाणम् ।
नमो नमोऽणंत चउक्कयाणँ ॥

॥ भुजंग प्रयातवृत्तम् ॥

करो आठ कर्म क्षये पार पाम्या,
जरा जन्म मरणादि भय जेणे वाम्या ॥
निरावर्ण जे आत्मरुपे प्रसिद्धा,
थया पार पामी सदा सिद्ध बुद्धा ॥१॥
त्रिभागो न देहावगाहात्मदेशा,
रह्या ज्ञानमय जात वर्णादि लेश्या ॥
सदानन्द सौख्यश्रिता ज्योतिरुपा,
अनाबाध अपुनर्भवादि स्वरूपा ॥२॥

॥ ढाल उल्लाला की देशी ॥

सकल करम मल क्षय करी, पूरण शुद्ध स्वरूपो जी ॥
अव्याबाध प्रभुता मयो, आतम संपत्ति भूपो जी ॥१॥

जेह भूप आतम सहज संपत्ति, शक्ति व्यक्ति पणे करी
स्वद्रव्यक्षेत्र स्वकाल भावे गुण अनंता आदरी ॥१॥
सु स्वभाव गुण पर्याय परिणति, सिद्ध साधन पर भणी,
मुनिराज मानस हंस समवड नमो सिद्ध महा गुणो ॥२॥

॥ पूजा-ढ़ाल-श्रीपालरास की देशी में ॥

समयपयेसंतर अणफरसी,
चरम तिभाग विशेष ॥
अवगाहन लहीजे शिव पोहोता,
सिद्ध नमो तें अशेष रे-भविका ॥सिद्ध ॥१॥
पूर्व प्रयोग ने गति परिणामे, बंधन छेद असंग ॥
समय एक उर्ध्वगति जेहनो, ते सिद्ध प्रणमो रंग रे
भविका ॥२॥सि॥
निर्मल सिद्ध शिलानी ऊपरे, जोयण एक लोगंत ॥
सादि अनंत तिहा स्थिति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो संतरे
भविका ॥३॥सि॥
जाणे पण न शके कही पुर गुण, प्राकृततेम गुण जास ॥
उपमा विण नाणी भव मांहे, ते सिद्ध दियो उल्लासरे
भविका ॥४॥सि॥

ज्योति सुं ज्योति मली जस अनुपम,
विरमीसकलउपाधि ॥
आतमराम रमापति समरो,
ते सिद्ध सहज समाधि रे ॥भविका॥५॥सि॥

॥ ढाल ॥

रुपातीत स्वभाव जे, केवल दंसण नाणी रे ॥
ते ध्याता निज आतमा, होय सिद्ध गुण खाणी रे
॥बीर जिनेश्वर॥१॥

॥ अंत काव्यम् ॥

दुठ्ठठ्ठकम्मावरणण्णमुक्के, अनंतनाणाइसीरी चउक्के ॥
समग्गलोगग्गपयप्पसिद्धे, झाएह निच्चंपि
समग्गसिद्धे ॥१॥
विमल केवल भासन भास्करं,
जगति जंतु महोदय कारणं ॥
जिनवरं वहुमान जलौघतः,
शुचिमनः स्नपयामि विशुद्धये ॥१॥

दूसरी पूजा समाप्त

॥ दूसरी-पूजा का अर्थ ॥

आदि काव्यार्थ :—परमानन्द लक्ष्मी के स्थानरूप और अनंत चतुष्क वाले सिद्ध भगवान को वार २ नमस्कार हो ॥

॥ भुजंग वृत्तार्थ ॥

जो आठों कर्मों का क्षय करके, संसाररूपी समुद्र से पार पा गये हैं, जन्म, जरा व मृत्यु का भय भी जिनका हमेशा के लिये चला गया है, निर्मल आत्म स्वरूप से जो प्रसिद्ध हुये हैं और संसार समुद्र से पार पाकर हमेशा के लिये जो सिद्ध व बुद्ध हो गये हैं।

जिनके आत्म प्रदेश की अवगाहना तीसरे भांगे अर्थात् मनुष्य भव में शरीर का जो माप हो उसमें से अन्तिम समय में एक भाग बाद कर दो भाग में आत्म प्रदेश का घन होता है और इतनी ही अवगाहना आत्म प्रदेशों की–सिद्ध शिला पर सदा ही रहती है, ऐसा पूर्ण शुद्धस्वरूप ज्ञानमय जिनका है, जो वर्णादि 'लेश्या' रहित है, यहां वर्ण कहते-वर्ण, गंध, रस और स्पर्श तथा लेश्या-कृष्ण, नील, कापोत, तेजस, पद्म और शुक्ल रूप यह सब पुद्गल दशा होती है, आत्मा इनसे भिन्न है. इसलिये वर्ण लेश्या सिद्ध जीवों के नहीं होती। छः लेश्या यह मन के भिन्न परिणाम का रूप है इसलिये इनको रूपी कहते हैं। विज्ञान शास्त्रियों ने

मन के परिणामों के रंग नवयुग के यंत्र से सिद्ध किये हैं। जैसे मन के परिणाम जब रौद्रमय होते हैं तब कृष्ण लेश्या होने से उस समय का विचार रंग श्याम रंग का होता है बाद की लेश्याएँ मन के परिणामों में फेरफार होने से श्यामता कम होकर उज्वलता बढ़ती है–अंतिम लेश्या का रंग श्वेत होता है। ऐसे सिद्ध भगवान सदानंद व सुख का आश्रय करके स्थित हैं, जो ज्योति स्वरूप हैं, पीड़ा रहित हैं और पुनः भव संतति पाने वाले नहीं हैं क्योंकि कर्म बीज का नाश हो गया है और कर्म सब कट चुके हैं ॥

!! उल्लालाढ़ालार्थ !!

तमाम कर्मरूप मेल को दूर करके जो पूर्ण शुद्ध स्वरूप को पा चुके हैं और पीड़ा रहित ठकुराई वाले और आत्म संपत्ति के स्वामी हैं, यद्यपि सिद्ध स्थान में ठकुराई शब्द घटित नहीं होता लेकिन यह तो परमात्मा और बहिरात्मता की सम तुलना में ठकुराई है, सिद्ध स्थान में स्वतन्त्र आनंद है ॥१॥

जो स्वभाविक आत्मिक संपत्ति के स्वामी हैं, जिन्होंने निज की सम्पत्ति को प्रगट की है और खुद के द्रव्य क्षेत्र काल और भाव पूर्वक अनंत गुण को प्रगट किये हैं जो इस तरह घटित होते हैं।

(१) द्रव्य–कहते पर द्रव्य- अर्थात् पराई आत्माओं के गुण जिन्होंने नहीं लिये हैं, (२) क्षेत्र कहते खुद ही अवगाहना में ही स्थिर रह रहे हैं जिससे स्वक्षेत्र में निज के ही गुण हैं, (३) काल

निर्मल सिद्धशिला के ऊपर जहाँ से एक योजन लोक का अंत है वहाँ पर जिनकी सादि अनंतकाल स्थिति है उन सिद्ध के जीवों को हे सत्पुरुषो प्रणाम करो। यहाँ पर आदि शब्द जो लिया गया है वह एक जीव की सिद्धि के आश्री लिया है, परन्तु पुनः वहाँ से च्यवन नहीं होता जिससे अनन्त हैं और सर्व सिद्धों के आश्री अनादि अनंतकाल ज्ञानियों ने बताया है ॥३॥

जिस तरह ग्रामीण मनुष्य नगर के गुण जानता है परन्तु कह नहीं सकता इसी तरह से ज्ञानी पुरुषों को जिनके लिये कोई उपमा नहीं मिलती है ऐसे सिद्ध भगवान् आनन्द देवें ॥४॥

उपमा रहित जिनकी ज्योति अन्य ज्योतियों में मिल गई है, जिनकी समस्त उपाधियाँ विराम पा चुकी है और जो आत्मा में ही रमण करने वाले अध्यात्म लक्ष्मी के स्वामी हैं ऐसे स्वाभाविक समाधिवंत सिद्धों को स्मरण करो ॥५॥

॥ ढालार्थ ॥

जो रुपातीत स्वभाव वाले और केवल दर्शन केवलज्ञान वाले का ध्यान करता है वह पुरुष गुण की खान रूप सिद्ध बन जाता है।

॥ अंत काव्यार्थ ॥

आठ कर्मों के आवरण से जो मुक्त हो गये हैं और

अनंत ज्ञानादि चतुष्क लक्ष्मी वाले समग्र लोक के अग्र पद को प्राप्त कर प्रसिद्ध हुवे हैं ऐसे समस्त सिद्धों का हे भव्य प्राणियो ध्यान करो ।।१।।

दूसरी पूजा का अर्थ समाप्त

।। तृतीय आचार्य पद पूजा ।।

।। आद्य काव्य–इन्द्रवज्रावृत्तम ।।

सूरिण दूरीकयकुग्गहाणं, नमो नमो सूरसमप्पहाणं।

।। भुजंग प्रयातवृत्तम ।।

नमुं सूरि राजा सदा तत्त्व ताजा,
जिनान्द्रागमे प्रौढ़ साम्राज्य भाजा ।
षट्वर्ग वर्जित गुणे शोभमाना,
पंचाचार ने पालवे सावधाना ।।१।।
भवि प्राणी ने देशना देशकाले,
सदा अप्रमत्ता यथा सूत्र आले ।।
जिके शासनाधार दिग्दंति कल्पा,
जगे ते चिरंजीवजो शुद्ध जल्पा ।।२।।

॥ ढाल उल्लाला की देशी ॥

आचारज मुनिपति गणि,
गुण छत्तीशो धामोजी।
चिदानन्द रस स्वादता,
पर भावे नि:कामोजी ॥१॥
नि:काम निर्मल शुद्ध चिद्घन,
साध्य निज निरधार थो।
निज ज्ञान दर्शन चरण वीरज,
साधना व्यापार थी ॥२॥
भवि जीव बोधक तत्त्व शोधक,
सयल गुण संपत्ति धरा।
संवर समाधि गत उपाधि,
दुविध तप गुण आगरा ॥३॥

॥ ढाल श्रीपाल रास की देशी ॥

पंच आचार जे सुधा पाले, मारग भांखें सांचो,
ते आचारज नमिये तेहशुँ, प्रेम करी ने जाचो रे ॥
भविका ॥१॥

वर छत्रीश गुणे करी सोहे युगप्रधान जन मोहे,
जग बोहे न रहे खिण कोहे, सूरि नमुं ते जोहे रे ॥
भविका ॥२॥

नित्य अप्रमत्त धर्म उव ऐसे, नही विकथा न कषाय।
जेहने ते आचारज नमिये, अकलुष अमल असाय रे।
भविका ॥३॥

जे दिये सारण वारण चोयण, पडिचोयण वली जनने
पटधारी गच्छ थंभ आचारज ते मान्या मुनि मनने रे
भविका ॥४॥

अत्थमिए जिन सूरज केवल वंदीजे जगदीवो।
भुवन पदारथ प्रकटन पटु ते आचारज चिरंजीवो ॥
भविका ॥५॥

॥ ढाल ॥

ध्याता आचारज भला महामंत्र महाध्यानी रे।
पंच प्रस्थाने आतमा, आचारज होय प्राणी रे ॥

॥ अंत काव्यम् ॥

नतं सुहं नहि पिया न माया,
जे दिंति जीवाणिह सूरिपाय ॥

तम्हाहु ते चेव सया भजेह,
जं मुक्ख सुक्खाइ लहु लहेह ॥१॥
विमल केवल भासन भास्करं,
जगति जंतु महोदय कारणं ॥
जिनवरं बहुमान जलौघतः,
शुचिमनः स्नपयामि विशुद्धये ॥२॥

॥ तीसरी पूजा का अर्थ ॥

कुवादिरूप कुग्रहों को जिन्होंने दूर कर दिये हैं और जो सूर्य जैसे अत्यन्त तेजस्वी हैं ऐसे आचार्य महाराज को नमस्कार हो।

॥ वृत्तार्थ ॥

जिन आगम का ज्ञान जिनको हमेशा ताजा रहता है, तत्त्व-ज्ञान की स्फूरणा हुआ करती है, उत्तम साम्राज्य को जो भोगते हैं और छत्तीस गुणों से जो सुशोभित हैं और पाँच आचारों को पालन करने में जो सावधान हैं ॥१॥

हमेशा देशकाल को देखकर भव्य प्राणियों को सूत्रानुसार प्रमाद रहित होकर उपदेश देते रहते हैं, और जो जैनशासन के तो स्तंभ समान है, दिशा गजतुल्य, शुद्ध वचन बोलने वाले हैं ऐसे [illegible] में चिरंजीव रहो ॥२॥

आचार्य तो सूर्य समान यूं बताये गये कि सूर्य के प्रकाश होने से ग्रहों की चमक चली जाती है, इसी तरह अज्ञानवादी कुवादी जो अनेकान्तवाद का खण्डन कर एकान्तवाद को मानने वाले हैं उनका वाद आचार्य के सामने नहीं ठहर सकता, और छत्तीसगुण इस तरह बताये गये कि पाँचों इन्द्रियों का संवर करने वाले, ब्रह्मचर्य की नौ वाड़ को धारण करने वाले, चार कषाय रहित, पंचाचार युक्त, पांचमहाव्रतों को धारण करनेवाले, पाँच समिति और तीन गुप्ति के धारण करनेवाले, पाँच आचार में ज्ञानाचार, दर्शनाचार चरित्राचार, तपाचार, वीर्याचार सहित और देशना समयानुकूल देते हैं यदि समय की पहचान न हो तो भैंस के सामने भागवत वाली बात होती है। आत्मा का गुणस्थान अप्रमत्त है जिससे आचार्य भी विकथा के वश न होकर प्रमाद रहित रहते हैं दिशागज का मतलब तो यह होता है कि लौकिक दंत कथाओं में दिशागज की कल्पना की गई है जिसका सार यह है कि आचार्य तो दशों दिशाओं से आने वाले अज्ञानता के प्रवाह को रोक सकते हैं और दशों दिशाओं में तत्त्वज्ञान फैला सकते हैं।

॥ उल्लालार्थ ॥

आचार्य मुनियों के गणि के स्वामी होते हैं। शिष्य समुदाय को गण कहते हैं। ऐसे गण पर जो काबू रखते हैं वे गणि कहे जाते हैं, ऐसे छत्तीस गुणों के स्थान जो ज्ञानानंद रुप रस का स्वाद लेते हैं और पुद्गलिक भावों से इच्छा रहित होते हैं ॥१॥

निज के ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य रूप साधनों को काम में लेने से जिनको निष्काम, निर्मल और शुद्ध केवल ज्ञान साध्य होता है, क्योंकि साधन विना साध्य सिद्ध नहीं होता। जैसा साधन हो वैसा साध्य होता है। आम की गुठली में से ही आम का वृक्ष होता है, इसी तरह केवलज्ञान के आदर्श के लिये ज्ञान दर्शन आदि की आराधना आवश्यकीय मानी गई है। ऐसे आचार्य भव्यजीवों को वोध देते हैं, तत्त्व का शोधन करते हैं और समस्त गुण रुप सम्पत्ति को धारण करने वाले हैं, संवर रुप समाधिवाले, उपाधि रहित और दो तरह के तप की खान है।

संवर समिति गुप्ति परिषहादि सत्तावन प्रकार के होते हैं। जिससे समाधि प्रगट होती है और इसी कारण से चित्त में विकल्प नहीं उठते और सरोवर की तरह शांत होते हैं। बाह्य उपाधि गृह संसार के क्लेश और अन्तर उपाधि कषाय का त्याग इस तरह दोनों उपाधि रहित होते हैं।

तप की व्याख्या में बाह्य आभ्यंतर तप बताते हुवे कहा है कि (१) अनशन (२) उणोदरी (३) वृत्तिसंक्षेप (४) रसत्याग (५) काय क्लेश (७) संलीनता ये तो वाह्य तप हैं। (१) प्रायश्चित (२) विनय (३) वैयावच्च (४) स्वाध्याय (५) ध्यान और (६) कायोत्सर्ग ये अभ्यंतर तप हैं। ऐसे गुणवाले आचार्य होते हैं।

॥ पूजा ढालार्थ ॥

जो ठीक तरह से पंचाचार का पालन करते हैं, सत्य मार्ग का उपदेश देते हैं ऐसे आचार्य महाराज को नमस्कार करो और उनके साथ प्रेम बताकर याचना करो।

प्रेम तो तन्मयता होती है तभी आता है। दुनियांदारी का प्रेम तो मोह माया और स्वार्थ से उत्पन्न होता है और गुणानुरागी प्रेम तो निस्वार्थ होने से आत्मिक उन्नति को साध सकता है, और जो लघु-छोटे होते हैं वे हमेशा बड़ों से याचना किया करते हैं इस प्रसंग में आचार्य विशेष गुण सम्पन्न होने से व उदार होने से जगत के जीवों पर उपदेशामृत व उच्च वर्त्तन शुद्धि द्वारा अनेक उपकारों का दान दे सकते हैं इसलिये अज्ञानी मनुष्य ज्ञान को, असंयमी मनुष्य सद्वर्त्तन को प्रेम द्वारा आचार्य से प्राप्त कर सकता है ॥१॥

जो उत्तम छत्तीस गुणों से शोभायमान हैं, युग प्रधान होने से मनुष्यों को आश्चर्य उत्पन्न कराते हैं, जगत को बोध देते हैं, क्षण मात्र भी क्रोध नहीं करते ऐसे आचार्य महाराज की परीक्षा कर नमस्कार करता हूँ ॥२॥

हमेशा प्रमाद रहित रह कर जो धर्म का उपदेश देते हैं, विकथा कषाय तो जिनके पास रहते ही नहीं, जो पाप रहित

निर्मल और माया से अलग हैं ऐसे आचार्य महाराज को नमस्कार करो ॥३॥

जो सारण वारण, चोयण, और पड़िचोयण मनुष्यों को देते हैं जैसे याद करना, भूले हुवे को समझाना असंयम मार्ग में जाने वाले शिष्य को रोकना, प्रेरणा करके जागृत करना। जो पट्टधर गच्छ के स्तम्भ समान ऐसे आचार्य मुनियों के मन को आनंद प्राप्त कराने वाले होते हैं ॥४॥

केवलज्ञानी जिनेश्वररूप सूर्य अस्त होने पर भी जगत में दीपक रूप जो प्रकाश करते हैं, तीन जगत के पदार्थों का जो प्रकाश करते हैं ऐसे सूरिजी महाराज सदा चिरंजीव रहो ॥५॥

॥ ढालार्थ ॥

महा मंत्र के शुभ ध्यान से सुन्दर आचार्य पद का ध्यान करने वाले मनुष्यों की आत्मा पाँच प्रस्थान से आचार्य हो सकता है। आचार्य पद लेने वाले को सूरि मंत्र का जाप करके तदनुसार वर्त्तन रखने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है और पंच प्रस्थान कहते (१) विद्यापीठ (२) सौभाग्यपीठ (३) लक्ष्मीपीठ (४) मंत्रराज प्रयोग (५) और मेरुपीठ इन प्रस्थानों द्वारा सूरिमंत्र की सवा क्रोड़ जाप पूर्वक आराधना करनी पड़ती है। यह पाँचों प्रस्थान आत्म परीक्षा द्वारा अधिकार से सिद्ध हो सकते हैं।

॥ अंत काव्यार्थ ॥

इस संसार में पूज्य आचार्य से जो सुख मिलता है वैसा सुख माता पिता से भी नहीं मिल सकता। इनका नित्य सेवन करो जिससे मोक्ष सुख पा सकोगे ॥

इति तृतीय पूजार्थ

अथ चतुर्थ उपाध्याय-पद-पूजा

॥ आद्य काव्य इन्द्रवज्रा वृत्तम ॥

सुत्तत्थवित्थारण तप्पराणं नमो नमो वायग कुंजराणं ॥

॥ भुजंग प्रयात वृत्तम् ॥

नहीं सूरिपण सूरिगण ने सहाया,
नमुं वाचकात्यक्त मद मोहमाया ॥
वली द्वादशांगादि सूत्रार्थ दाने,
जिके सावधाना निरुद्धाभिमाने ॥१॥

धरे पंच ने वर्ग वर्जित गुणौघा,
अवाधि द्विच्छेदने तुल्य सिंघा ॥
गुणी गच्छ संधारणे स्थंभ भूता,
उपाध्याय ते वंदियें चित्त प्रभूता ॥२॥

॥ ढ़ाल उल्लाला की देशी ॥

खंति जुआ मुत्ति जुआ, अज्जव मद्दव जुत्ता जी ।
सच्चं सोयं अकिंचणा, तव संजम गुण रत्ताजी ॥१॥
जे रम्या ब्रह्म सुगुत्तिगुत्ता समिति समिता श्रुतधरा॥
स्याद्वादवादे तत्ववादक आत्म पर विभंजनकरा ॥
भव भीरु साधन धीर शासन वहन धोरी मुनिवरा ॥
सिद्धान्त वायण दानसमरथ, नमो पाठक पदधरा ॥२॥

॥ ढ़ाल श्रीपाल की देशी ॥

द्वादश अंग सझाय करेजे, पारग धारग तास ॥ सूत्र अर्थ विस्तार रसिक ते, नमो उवज्झाय उल्लासरे ॥
भविका ॥१॥

अर्थ सूत्रने दानविभागे, आचारज उवज्झाय ॥
भवत्रीजे जे लहे शिवसंपद, नमिये ते सुपसायरे ॥
भविका ॥२॥
मूरखशिष्य निपाई जे प्रभु, पाहणने पल्लव आणे ॥
ते उवज्झाय सकल जनपूजित, सूत्र अर्थ सविजाणेरे ॥
भविका ॥३॥
राजकुमार सरिखा गणचिंतक, आचारजपद योग ॥
जे उवज्झाय सदा ते नमतां, नावे भव भय सोगरे ॥
भविका ॥४॥
बावना चंदन रस सम वयणे अहित ताप सवि टाले ॥
ते उवज्झाय नमीजे जे वली, जिन शासन अजुवालेरे ॥
भविका ॥५॥

॥ ढाल ॥

तप सज्झाये रतसदा, द्वादश अंगनो ध्याता रे,
उपाध्याय ते आतमा जगबंधग जगभ्राता रे ॥
॥ वीर जि०॥

॥ अंत काव्यम् ॥

सुत्तत्थ संवेगमयंस्सुएणं,
संनोरखीरामय विस्सुएणं ॥
पीणंति जे ते उवज्झायराए,
झाएह निच्चंपिकयप्पसाए ॥१॥
विमल केवल भासन भास्करं,
जगति जंतु महोदय कारणं ।
जिनवरं बहुमान जलौघत,
शुचिमनः स्नपयामि विशुद्धये ॥

चतुर्थ पूजा समाप्त

चौथी पूजा का अर्थ

॥ काव्यार्थ ॥

सूत्रों का अर्थ विस्तार करने में तत्पर ऐसे उपाध्याय रूप हाथी को बारम्बार नमस्कार हो ॥

॥ वृत्तार्थ ॥

जो आचार्य नहीं हैं परन्तु आचार्य के परिवार को सहायता

देते हैं, अहंकार और मोहमाया से रहित हैं और बारह अंगादि का अर्थ धारण निरभिमानता से देने में सावधान हैं।

जिनमें पच्चीस गुणों का निवास है जैसे ग्यारह अंग (१) आचारांग, (२) सुयगडांग, (३) ठाणांग, (४) समवायांग, (५) भगवती, (६) ज्ञाताधर्म कथांग. (७) उपासक दशांग, (८) अंतगढ़दशांग (९) अनुत्तरोववाई (१०) प्रश्न व्याकरण (११) विपाक (१२) दृष्टि वाद जिनमें पूर्वोक्त ग्यारह अंग और बारह उपांग (१) उववाई (२) रायपसेणी (३) जीवाभिगम (४) पन्नवणा (५) जम्बूद्वीप पन्नति (६) चन्द्र पन्नति (८) कप्पिया (९) कप्पवडंसिया (१०) पुप्फिया (११) पुप्फचुलिया (१२) वह्नीदशांग ये कुल तेइस अंगोपांग और चरण सित्तरी व करण सित्तरी के पालने वाले इस तरह पच्चीस गुण सहित प्रखर वादी रूप हाथियों को हराने में सिंह के समान होते हैं, गच्छ को निभाने में मजबूत स्तंभभूत होते हैं, ऐसे विशाल ज्ञान वाले उपाध्याय को वंदन करो ॥१॥

॥ उल्लाला ढालार्थ ॥

जो क्षमा निर्लोभता सरलता और मृदुलता वाले हैं. सत्य पवित्रता और अकिंचनपण अर्थात परिग्रह मूर्छा रहित तप आदि गुणों में रंगायमान हैं ऐसे उपाध्याय को वंदन करो ॥१॥ जो ब्रह्मचर्य को पालने वाले हैं, तीन गुप्ति और पांच समिति सहित हैं, श्रुत ज्ञान धारण करने वाले, स्याद्वाद शैली से उत्तम उपदेश

देकर तत्त्वको वताने वाले जड़ चेतन का ज्ञान भेद की पहिचान वताने वाले, जड़-चेतन परीक्षा हो जाने से ही अहिंसा का स्वीकार व पालन होता है और इस भेद के जानने से भवभीरु होते हैं, भव का भय होने से साधन करने में धैर्यवान् है और जिन भगवन्त के शासन का भार वहन करने में वृषभ के समान श्रेष्ठ साधुपद मुनिधर्म पाये हुवे हैं इसी कारण आगम सूत्र की वांचना देने में शक्तिमान हैं ऐसे उपाध्याय पद को धारण करने वाले उपाध्याय को वारम्वार मेरी वंदना है ॥७॥

॥ पूजा ढाल का अर्थ ॥

जो वारह अंग का स्वाध्याय करते हैं और उनके रहस्य को जानने वाले सूत्रों के अर्थ को विस्तार से कहने वाले और वांचना देने में निपुण हैं ऐसे उपाध्यायजी महाराज को विनय सहित नमन वंदन करो ॥१॥

सूत्र और उसका अर्थ समझाने में आचार्य व उपाध्याय समर्थ होते हैं और ऐसे होने से ही तीसरे भव में मोक्ष पा सकते हैं ऐसे कृपावन्त मनोहर उपाध्यायजी महाराज को मैं वन्दन करता हूँ।

पत्थर में अंकुर उत्पन्न कर नव पल्लवित करना अति कठिन कार्य है तथापि मूर्ख पाषाण जैसे हृदयवाले शिष्य को उपदेश द्वारा धर्म उत्पन्न करा सकते हैं इसीलिये सर्वजनपूजित हैं और सर्व सूत्रों के अर्थ रहस्य को जानने वाले हैं ॥३॥

युवराज की तरह गण-गच्छ होने से आचार्य पद के योग्य माने गये हैं इसलिये ऐसे उपाध्यायजी महाराज को वंदन करने से जन्म जरा मृत्यु आधि-व्याधि का भय नहीं रहता ॥४॥

बावना चन्दन के रस की तरह प्रिय वचनों द्वारा अहितरूप अकल्याण परिताप को दूर करने वाले हैं, और जैन शासन का प्रकाश करने वाले हैं ऐसे उपाध्यायजी महाराज को नमन वंदन करो ॥५॥

॥ ढाल का अर्थ ॥

तप करने व स्वाध्याय-पठन पाठन में नित्य लगे रहते हैं, बारह अंग का ध्यान करते हैं, प्राणीमात्र का कल्याण करने का भावनावाले दुखियों के दुखों को निवारण करने में भाई के समान ऐसे उपकारी उपाध्यायजी महाराज होते हैं।

॥ अंत का काव्यार्थ ॥

उत्तम नीर, क्षीर और अमृत समान स्वाद वाला आनन्द प्राप्त कराने जैसा जो सूत्रों का अर्थ है उसके द्वारा संवेग सहित श्रुतज्ञान से भव्यात्माओं को संतुष्ट करते हैं ऐसे उपकारी उपाध्याय जी महाराज का नित्य ध्यान करना चाहिये।

चौथी पूजा का अर्थ समाप्त

पाँचवीं मुनि पद-पूजा

॥ आद्य काव्य इन्द्रवज्रा वृत्तम ॥

साहूण संसाहि अ संजमाणं, नमो नमो सुद्धदयादयाणं।

॥ भुजंगप्रयात वृत्तम् ॥

करे सेवना सूरिवायगगणिनी,
करुं वर्णना तेहनी शी मुणिनी।
समेता सदा पंच समिति त्रिगुप्ता,
त्रिगुप्ते नहीं काम भोगेषु लिप्ता ॥१॥
वली बाह्य अभ्यंतर ग्रंथि टाली,
होये मुक्ति ने योग्य चारित्र पाली।
शुभाष्टांग योगे रमे चित्तवालो,
नमुं साधु ने तेह निज पाप टाली ॥२॥

॥ ढाल उल्लाला की देशी ॥

सकल विषय विषवारी ने, निःकामी निःसंगीजी।
भव-दव-ताप शमावता आतम साधन रंगीजो ॥१॥

जे रम्या शुद्ध स्वरूप रमणे, देह निर्मम निर्मदा ।
काउसग्ग मुद्रा ध्यान आसन, ध्यान अभ्यासी सदा ।२।
तप तेज दीपे कर्म झोपे नैव छीपे पर भणी ।
मुनिराज करुणा सिंधु त्रिभुवन बंधु प्रणमुं हितभणी।३।

॥ पूजा-ढाल-श्रीपालरास की देशी ॥

जेम तरु फूले भमरो बेसे, पीड़ा तसु न उपावे ।
लेई रस आतम संतोषे तेम मुनि गोचरी जावे रे ।
॥ भविका सि० ॥१॥

पांच इन्द्रिय ने जे नित्य झीपे,
षटकायक प्रतिपाल संयम सत्तर प्रकार आराधे,
वंदुं तेह दयाल रे ॥ भविका सि० ॥२॥
अढार सहस्स शीलांगना धोरी अचल आचार चरित्र।
मुनि महंत जयणायुत वंदी, कीजे जन्म पवित्र रे ।
॥ भविका सि० ॥३॥
नवविध ब्रह्म गुप्ति जे पाले बारस विह तप शूरा ।
एहवामुनि नमियें जो प्रगटे, पूरवपुण्य अंकुरा रे ॥
भविका ॥सि०॥४॥

सोना तणी परे परीक्षा दीसे, दिन दिन चढ़ते वाने।
संजम खप करता मुनि नमिये,देशकाल अनुसाने रे ॥
भविका ॥सि०॥५॥

॥ ढ़ाल ॥

अप्रमत्त जें नित्य रहे, नवि हरखे नवि सोचेरे।
साधु सुधा ते आतमा, शुं मुंडे शुं लोचेरे ॥
॥ वीरजि० ॥१॥

॥ अंत काव्यम् ॥

खंतेय दंतेय सुगुत्ति गुत्तो,
मुत्तोय संते गुण जोग जुत्तो।
गयप्पमाए हय मोह माये
झाएह निच्चं मुणि रायपाए ॥१॥
विमल केवल भासन भास्करं,
जगति जन्तु महोदयकारणम्।
जिनवरं बहुमान जलौघतः
शुचिमनः स्नपयामि विशुद्धये ॥२॥

पंचमी-पूजा-पूर्ण

पंचमी-पूजा का अर्थ

।। आद्य काव्यार्थ ।।

शुद्धता पूर्वक जिन्होंने संयम का पालन किया है, दया पूर्वक जिन्होंने इन्द्रिय दमन किया है अर्थात् अज्ञान कष्ट नहीं करके दया सहित इन्द्रिय दमन किया है, ऐसे साधु महाराज को मेरा वारंवार नमस्कार हो।

वृत्तार्थ

जो आचार्य उपाध्याय गणि की सेवा करते रहते हैं, सर्वदा पांच समिति सहित तीन गुप्तियों से सुरक्षित हैं अर्थात् मन वचन काया पर जिन्होंने काबू कर लिया है, काम भोग-भोग पदार्थ प्राप्ति की इच्छा से रहित ऐसे मुनिराज प्रशंसा के योग्य हैं ।।१।। बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह की गांठें जिन्होंने तोड़दी हैं, मोक्ष प्राप्त हो सके ऐसी चारित्र पालना चित्त को सावधान रखकर उत्तम योग के अष्टांगों में रमण करते हैं, ऐसे मुनिराज को मैं अपने पाप दूर करने के लिये नमन वंदन करता हूँ ।।२।।

।। उल्लाला ढाल अर्थ ।।

पांचों इन्द्रियों के तेवीस विषय रूप जहर का त्याग करके

जो निष्काम-संग रहित विचार कर संसार रुप दावानल के ताप को शांत करते हैं और आत्मिक उन्नति में ओतप्रोत होकर रहते हैं ॥१॥ जो शुद्धमान आत्म स्वरुप से स्थिरता में रहकर शरीर का ममत्व नहीं रखते, अहंकार का जिन्होंने त्याग किया है, काउसग्ग-योगमुद्रा में धैर्यता धारण किये हुवे हैं और योग के आसन व ध्यान करने में निरंतर अभ्यास किया करते हैं, तप के तेज से कान्ति वाले होकर कर्मों को जो जीतते हैं, और सांसारिक अन्य पदार्थों के लालच में नहीं आने वाले दया के समुद्र तीन भुवन के वंधु ऐसे मुनि महाराज को अपने भले के लिये वन्दन नमस्कार करता हूँ ॥२॥

पूजा-ढाल का अर्थ

जिस प्रकार वृक्षों के पुष्प ऊपर रस लेने क लिये भँवरे वैठते हैं लेकिन पुष्प को पीड़ा नहीं पहुँचाते और रस संग्रह करके अपनी आत्मा को संतुष्ट करते हैं इसी तरह से मुनिराज गोचरी लेते हैं, जिस प्रकार गाय चरती चरती चलती है, तदनुसार किसी को पीड़ा पहुँचाये विना गोचरी लाते हैं ॥१॥ नित्य पाँचों इन्द्रियों को वश में-संयम में रखते हैं, छः काय की प्रतिपालना वहुत खुशी से करते हैं, और सतराह प्रकार से संयम पालते हैं। पाँच अवृत्त का त्याग, चार कषाय का त्याग, पांचों इन्द्रिय पर निग्रह और मन वचन काया पर कावू रखने वाले कृपावान् मुनि महाराज को मैं वारंवार-वंदना करता हूँ।

अठारह हजार भेद वाले शियल के रथ को खेंचने में उत्तम वृषभ के समान हैं। अठारा हजार शियल के भेद का वर्णन प्रवचन सारोद्धार पृष्ठ ३३६ पर और प्रकरण रत्नाकर तीसरे भाग में है, जिसमें बताया है कि तीन योग, तीन करण, चार संज्ञा, पांच इन्द्रिय, दश पृथ्वी कायारम्भ, और दश श्रमण धर्म; इनको पृथ्वीकाय आदि दश भेदों को प्रत्येक भेद से गुणा करते एक सो भेद होते हैं, पांच इन्द्रिय से गुणा करते पांच सो भेद हुए, चार संज्ञा से गुणा करते दो हजार भेद हुए, तीन योग से गुणा करते छे हजार भेद हुए, तीन करण से गुणा करते अट्ठारह हजार भेद होते हैं, इस तरह से विस्तरित भेद बताये हैं, मनुष्य को विषय वासना पर संयम रखने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन कर अनेक उदाहरण दिये हैं, जीवाभिगम सूत्र में प्रमाण है कि विषय विकार विषयाभिलाषा पुरुष को घास का पूला जलने की तरह शीघ्र समाप्त होती है। स्त्री को अग्नि की भरी हुई अंगेठी की तरह छेड़ने से, उचेंदने से अग्नि निकलती रहती है, तदनुसार विकार जागृत होता रहता है। नपुंसक को नगर का दाह जैसा बहुत समय तक विषय विकार शांत नहीं होता, इसी तरह पन्नवणा सूत्र में चार प्रकार की संज्ञा के वर्णन में कहा है कि मैथुन संज्ञा चार प्रकार की होती है, (१) वेद–मोहनीय कर्म के उदय से जागृत हो (२) विकारी पदार्थ खाने से विषय वासना बढ़ती है। (३) स्त्री-स्वरुप हाव भाव चेष्टा आदि देखने से मन परिणाम चलित होते हैं, और भावनाएं बिगड़ती है।

ब्रह्मचर्य की नव वाड़ और बारह प्रकार का तप करने में जो शूरवीर हैं ऐसे मुनिराज को जो पूर्वभव में पुण्य उपार्जन किया हो उसके अंकुर पैदा हो तब ही नमन-वन्दन करने का प्रसंग आता है ॥४॥ जिनके संयम की परीक्षा सोने की तरह कष छेद ताप से होती है तदनुसार शुद्ध संयम पालन से चारित्र निर्मल बनाया है जिससे दिन प्रतिदिन चढ़ते रंग वाले होकर देश काल प्रमाण से संयम का पालन करते हैं ऐसे मुनिराज को हे भव्यात्मा वन्दन करो ॥५॥

॥ ढाल का अर्थ ॥

जो नित्य प्रमाद रहित रहते हैं हर्ष शोक जिनको उत्पन्न नहीं होता और न उसमें मग्न होते हैं अर्थात ईष्ट संयोगों में राग और अनिष्ट संयोग में द्वेष जिनको उत्पन्न ही नहीं होता ऐसी आत्मा साधु जीवन के लिये अमृत तुल्य है। अमृत जिस प्रकार मनुष्यों को संजीवन करता है तदनुसार ऐसे गुण साधु महात्माओं को अमर बनाते हैं। मुंडन मात्र से अथवा लोच से ही सिद्धि नहीं होती यह तो द्रव्य लोच है लेकिन भाव लोच क्रोध, मान, माया, लोभ का अभाव हो अर्थात् वास्तविक मुनिपन उत्पन्न हो तो सिद्धि होती है।

॥ अंत्य काव्यार्थ ॥

क्षमावान इन्द्रिय दमन करने वाले सुगुप्तियों से रक्षित

निर्लोभी शान्त गुण वाले त्रिकरण योग सहित अप्रमादी मोहमाया का त्याग किया है जिन्होंने ऐसे मुनिराज के चरण कमल का नित्य ध्यान करो ॥

इति पाँचवीं-पूजा का भावार्थ ।

॥ अथ छट्ठी सम्यग् दर्शन पद पूजा ॥

॥ आद्य काव्य—इन्द्रवज्रावृत्तम ॥

जणुत्त तत्ते रुइलक्खणस्स,
नमो नमो निम्मल दंसणस्स ॥

॥ भुजंग प्रयातवृत्तम ॥

विपर्यास हठवासना रूप मिथ्या,
टले जे अनादि अच्छे जेम पथ्या ।
जिनोक्ते होये सहज थी श्रद्धधानं,
कहिये दर्शन तेह परमं निधानं ॥१॥
बिना जेहथी ज्ञान अज्ञानरूपं,
चरित्रं विचित्रं भवारण्य कूपम् ।

प्रकृति सातने उपशमे क्षय ते होवे,
तिहां आपरूपे सदा आप जोवे ॥२॥

॥ ढाल-उल्लाला की देशी ॥

सम्यग्दर्शन गुण नमो, तत्त्व प्रतीत स्वरूपोजो ।
जसु निरधार स्वभाव छे, चेतन गुण जे अरूपोजी ॥१॥
जे अनुप श्रद्धा धर्म प्रगटे, सयल पर इहा टले ।
निज शुद्ध सत्ता प्रगट अनुभव करण रुचिता उच्छले ॥२॥
बहुमान परिणति वस्तुतत्त्वे अहव तसु कारण पणे ।
निज साध्य दृष्टे सव करणी, तत्त्वता संपत्ति घरे ॥३॥

॥ पूजा-ढाल-श्रीपालरासजी की देशी ॥

शुद्ध देव गुरु धर्म परीक्षा, सदहणा परिणाम ।
जेह पामीजे तेह नमीजे, सम्यग् दर्शन नामरे ॥
भविका ॥सि०॥१॥
मल उपशम क्षय उपशम क्षय थी, जे होय त्रिविध अभंग ।
सम्यग्दर्शन तेह नमीजे, जिन धर्म दृढ़ रंग रे ॥
भविका ॥सि०॥२॥

पंचवार उपशमिय लहीजे, क्षय उपशमिय असंख।
एक वार क्षायिक ते समकित, दर्शन नमिये असंखरे॥
भविका ॥सि०॥३॥
जे विण नाण प्रमाण न होवे,चारित्र तरु नवि फलियो।
सुख निर्वाण न जे विण लहिये,समकित दर्शन बलियोरे।
भविका ॥सि०॥४॥
सड़सठ बोले जे अलंकरियो, ज्ञान चारित्रनु मूल।
समकित दर्शन ते नित्य प्रणमुँ, शिव पंथनुँ अनुकूल रे॥
भ० ॥५॥

॥ ढाल ॥

सम संवेगादिक गुणा, क्षय उपशम जे आवे रे।
दर्शन त तेहिज आतमा, शुं होय नाम धरावे रे॥१॥

॥ अंत-काव्यम् ॥

जंद दव्वछक्काइ सु सद्दहाणं,
तं दंसणं सव्वगुणप्पहाणं।
कुग्गाह वाही उवयंति जणा,
जहा विसुद्धेण रसायणेणं॥१॥

विमल केवल भासन भास्करं,
जगति जंतु महोदय कारणं।
जिनवरं बहुमान जलौघतः,
शुचिमनः स्नपयामि विशुद्धये ॥२॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ आद्य काव्यार्थ ॥

जिन भगवान ने जो तत्त्व बताये हैं उनमें रुचिवंत हो सम्पूर्ण विश्वास रखने जैसे निर्मल दर्शन समकित को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

॥ वृत्तार्थ ॥

विपरीत कदाग्रह की वासना-इच्छावाला मिथ्यात्व जो पाँच प्रकार का बताया है (१) अभिग्रहित मिथ्यात्व-परीक्षा किये विना अपनी धर्म बात-मान्यता के कदाग्रह को नहीं छोड़े (२) अनभिग्रहित मिथ्यात्व-जितने भी धर्म दर्शन हैं सबको एकसा समझे परंतु बुद्धि द्वारा विशेष महत्वता को न जान सके (३) अभिनिवेश मिथ्यात्व अपना मत धर्म बात की स्थापना पुष्टि के लिये सूत्र का अर्थ विपरीत करे (४) सांशयिक मिथ्यात्व, जिनमत में शंका उत्पन्न कर चुपचाप बैठा रहे किन्तु ज्ञानवान् तत्त्वज्ञ मुनि महाराज के मिलने पर शंका निवारण करने का प्रयत्न नहीं करे (५) अनाभो

गिक मिथ्यात्व-किसी धर्म को सत्यासत्य रूप से न समझ सके, इस तरह कदाग्रह की वासनाएँ हैं जिनका वर्णन पन्नवणा सूत्र में आता है। इनका निवास शरीर में हो तो समकित-श्रद्धा सम्यग् दर्शन की प्राप्ति नहीं हो पाती ऐसी व्याधियाँ जिस प्रकार पथ्य पालन से रोग नाश होता है तदनुसार सम्यग्दर्शन की आराधना करने से भगवंत के कहे हुवे तत्त्वों पर स्वाभाविक ही श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है इसीलिये उत्कृष्ट निधान के देने वाली यह आराधना बताई गई है. जिस प्रकार धन की प्राप्ति होने से मनुष्य श्रीमंत गिना जाता है, तदनुसार सम्यग्दर्शन रूप निधान के आने से आत्मा मोक्ष का अधिकारी कहलाता है।

समकित रहित ज्ञान जिसने प्राप्त किया हो और उसकी अंश मात्र भी श्रद्धा न आ सकी हो तो वह ज्ञान कितना ही अच्छा हो तो भी अज्ञान रूप बताया गया है। अनेक मनुष्यों को आश्चर्य का एक चारित्र मवरूप वन खंड में पानी के कुंए जैसा है, समझ लेना चाहिए कि कुंआ भी व पानी भी उत्तम है लेकिन वह वन खंड के निर्जन स्थान में है इसलिये किसी के काम नहीं आ सकता और वह कुंआ व पानी यूँ ही पड़ा रहता है, इसी तरह से कई बार धर्म पाया चारित्र पालन किया आकरी तपस्या भी की लेकिन वह सारी समकित रहित थी इसलिये मुक्ति प्राप्त कराने के लायक नहीं कही जाती जब सात प्रकृतियों का उपशम-क्षयोपशम अथवा क्षय हो जाय तब आत्मा निज स्वरूप को साक्षात्कार देख सकता है।

(१) अनंतानुवंधी क्रोध (२) अनंतानुवंधी मान (३) अनंतानुवंधी माया (४) अनंतानुवंधी लोभ (५) मिथ्यात्व मोहनीय (६) मिश्र मोहनीय (७) समकित मोहनीय इस तरह की सातों प्रकृतियों का क्षय हो तव क्षायिक समकित प्रगट होता है। इन प्रकृतियों का उपशम हो तव औपशमिक समकित आता है और उदयमान का क्षय और साथ ही सत्तागत का उपशम हो तव क्षयोपशम उत्पन्न होता है इस तरह तीन प्रकार से समकित प्रगट होता है जिसका विशेष स्वरूप जानने जैसा है —

जैसे : उपशमिक—उसको कहते हैं कि मिथ्यात्व के दलिये रस के साथ आत्मा अपने अनुभव से क्षय करने को और उदय में न आये हों उनको उदय में न आने दें ऐसी स्थिति उत्पन्न हो।

क्षयोपशमिक का यह मतलव है कि उदय में आये हुवे मिथ्यात्व के एक ठाणीयारस वाले शुद्ध दलिये उदय में रहें और वाकी रहे हुवे अनुदय दलियों को साथ ही शुद्ध वनाता जाय और वेदता जाय तो क्षयोपशमिक समकित आता है।

क्षायिक उसे कहते हैं कि सातों प्रकृति का क्षयरूप गुण उत्पन्न हो तो क्षायिक समकित होता है।

समकित को समझे विना जो क्रिया आराधन किया जाय वह विशेष फल नहीं देता, समकित–विषय को समझने के लिए सणसट्ठ भेद की जानकारी अवश्य करना चाहिए, जिनकी

व्याख्या में, चार प्रकार की श्रद्धा, तीन लिंग, दश प्रकार का विनय, तीन शुद्धि पांच भूषण, पांच भूषण, पांच लक्षण, आठ प्रभावक, छे यतना, छे आगार, छे भावना और छे स्थानक इस प्रकार सणसट्ठ भेद जानने योग्य है।

॥ उल्लाला ढाल का अर्थ ॥

हे भव्य जीवो ! सम्यग्दर्शन गुण को नमस्कार करो। यह तत्त्व की प्रतीति रूप माना गया है और अरुपी आत्मा है। इसके गुण की पहिंचान करने का इसका स्वभाव निश्चय माना गया है। ऐसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से उपमा न दे सकें ऐसा श्रद्धा धर्म प्रगट होता है।

श्रद्धा यह आत्मा का गुण है। देव गुरु और धर्म की शुद्धता से व विश्वास रखने से व्यवहार शुद्धि मानी गई है, और आत्मा को आत्म स्वरूप से व जड़ पदार्थ को जड़ स्वरूप से पहिचाना जाय तो निश्चय रूप से जाना गया समझना। इस तरह से दोनों प्रकार की श्रद्धा जब आत्मा को प्रगट होती है तब सम्यग्-दर्शन रूप चतुर्थ गुणस्थान की प्राप्ति हुई समझना चाहिये।

आत्मा ऐसे लक्षण वाला कब हो सकता है कि विभाव दशा का नाश हो। आत्म स्वरूप जानने के लिये जड़ पदार्थ धन धरा सम्पत्ति की प्राप्ति नाश में हर्ष शोक न हो ऐसे समय तो इनके

आये गये में साक्षी रूप रहकर उदय में आई हुई प्रकृतियों द्वारा भोग भोगता है। लेकिन अंतरात्मा अवस्था स्वस्वरूप में तल्लीन हो तो दूसरी तरह की अभिलापा नहीं रह सकती. और ऐसी दशा में आत्मा आती है तब शुद्ध श्रद्धा प्रगट करने का अनुभव होता है और करणों की प्रकृति रुचिवंत होकर उछलने लगती है।

कारण चार प्रकार के बताये गये (१) यथा प्रवृत्तिकरण (२) अपूर्वकरण (३) अंतकरण (४) अनिवृत्तिकरण जिनका स्वरूप अवश्य समझना चाहिये।

पहला यथा प्रवृत्तिकरण कब हो पाता है कि अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि आत्मा पानी में पापाण की तरह या नदी में गुड़ते गुड़ते जैसे एक आकार बन जाता है तदनुसार निर्जरा करता हुवा 'आयु' के सिवाय सात कर्मों को पल्योपम के असंख्येय भाग से कुछ कम एक सागरोपम कोटि स्थिति वाले करने जैसी स्थिति प्राप्त होने से राग द्वेष की निविड़ ग्रंथी के समीप आता है, ऐसे समय में द्रव्य चरित्र प्राप्त कर सकता है और पूजा सत्कार भी प्राप्त कर लेता है और ऐसी स्थिति तक अभव्य आत्मा भी आ सकते हैं।

अपूर्वकरण, जब होता है कि ऊपर बताई हुई स्थिति प्राप्त होने के बाद विशेप अध्यवसाय द्वारा वीर्य-बल से राग-द्वेप की ग्रंथी का भेद करे।

अनिवृत्तिकरण—अपूर्वकरण करने के वाद आत्मा मिथ्यात्व के कर्मदलों को उपशांत अर्थात् क्षय करने का उद्यम करता रहे तो उत्पन्न होता है।

अंतकरण—तो उदय में आई हुई मिथ्यात्व वासनाएँ-इच्छाओं को पहले क्षय कर देवे और उदय में आने वाली मिथ्यात्व वासनाओं को उपशांत कर स्थिर आत्म गुण वाला आत्मा अँतर्मुहुर्त्त पर्यंत स्थित रहे तो ऐसा करण उत्पन्न हो गया समझना चाहिये।

ऐसी स्थिति प्रगट होने से उमंग के साथ पदार्थ के तत्त्व प्रति वहुमान होता है या यूं समझिये कि वहुमान करने का स्वभाव हो जाने से वस्तु तत्त्व प्राप्ति का कारण होता है और करण उत्पन्न करने के कारण जिन प्रतिमा पूजा भावना, दान, शियल तप भाव आदि साधनों द्वारा पहले वताये हुवे करण आत्मवीर्य प्रगट होकर सम्यग् दर्शनप्राप्ति हो जाती है।

तमाम क्रियाओं में निज की दृष्टि आदर्श से अलग नहीं रहती, उसको स्थिर भावे होकर शुद्ध वनाने के लिये विचार किया जाय कि मैं शरीर से अलग हूँ, परिवार धन सम्पत्ति शरीर के धर्म हैं, मैं तो यानि आत्मा तो सबसे निराला है इस तरह का आदर्श होना चाहिये। तत्त्व का स्वरूप यही मेरी लक्ष्मी और आत्म स्वरूप ही धन सम्पत्ति है ऐसी दृढ़ मान्यता वाला हो ॥२॥

॥ पूजा ढाल का भावार्थ ॥

आत्मा को चाहिये कि शुद्ध देव गुरु धर्म की परीक्षा करके समझले कि यह सत्य है और इनकी सत्यता में सम्पूर्ण विश्वास-श्रद्धा प्राप्त करा सके ऐसे सम्यग्दर्शन पद को वारंवार वंदन नमस्कार हो ॥१॥

मैल का उपशम अर्थात् सात प्रकृति रूप जो मैल आत्मा पर चढ़ रहा है उसे उपशम, क्षय या क्षयोपशम जो अखंडित रूप तीन प्रकार से उत्पन्न होता है, जिससे जिनधर्म के प्रति रंग चढ़ता है अर्थात् चोल मजीठ के रंग जैसा कि लगे वाद मिटता ही नहीं ऐसी स्थिति में लाने वाला जो सम्यग्दर्शन है उसे हे भव्यात्माओ नमस्कार करो ॥२॥

सारे भव—यानि जीवन में उपशम की प्राप्ति पाँच वार होती है। क्षयोपशम समकित असंख्यात वार आ सकता है और क्षायिक समकित तो एक ही वार आता है और यह आने के वाद आत्मा तीसरे या चौथे भव में अवश्य मोक्ष पाता है. क्षायिक उत्पन्न होने वाद जाता नहीं है, ऐसे समकित प्राप्ति के असंख्य स्थान भगवंत ने वताये हैं उनको हे भव्य प्राणियों नमस्कार करो ॥३॥

समकित प्राप्ति के असंख्य स्थान और अनेक संजोगों द्वारा पृथक २ दृष्टिविंदु से समकित प्राप्ति हो सकती है। द्रव्य क्षेत्र

काल भाव आश्री असंख्य योग वताये हैं इन सवसे मुख्य दो भेद वताये गये (१) सहज (२) अधिगम, आत्मिक स्फुरण आत्मिक ज्ञान से प्राप्त हो उसको सहज प्राप्ति कहते हैं और उसे सम्यग्-दर्शन के नाम से पहिचाना जाता है। दूसरा अधिगम, गुरु महाराज द्वारा होता है इन दोनों के असंख्य भांगे स्थान संयोग से होते हैं तथापि ध्येय एक ही आत्म साधन के हेतु सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का होता है।

प्रति समय में अध्यवसायों की अनंत गुण विशुद्धि में वर्तता है और यथा प्रवृत्ति तथा अपूर्वकरण इन दोनों करणों में असंख्य लोक प्रदेश प्रमाण अध्यवसायों के स्थान वताये गये हैं ॥३॥

इस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति विना कितना ही ज्ञान प्राप्त किया हो तथापि वह प्रमाणभूत नहीं माना जाता। चारित्ररूप वृक्ष उत्पन्न हो गया हो तो भी सम्यग्दर्शन विना फल नहीं पा सकता, और मोक्ष सुख भी इसके विना प्राप्त नहीं होता। इसलिये सम्यग्दर्शन बहुत बलवान् वताया गया है।

ऐसा सम्यग्-समकित जो सड़सठ भेदों से शोभायमान है, ज्ञान और चारित्र का मूल है और मोक्षमार्ग को पाने के लिये अनुकूलता वाला है ऐसे सम्यग्दर्शन को नित्य प्रणाम करना चाहिये।

समकित के जो सड़सठ भेद वताये गये हैं वे जानने व धारण करने योग्य हैं। चार श्रद्धा (१) परमार्थ की स्तवना

(२) परमार्थ जानने की मान्यता (३) जिसमें समकित न हो उससे दूर रहना (४) मिथ्यात्वी से गाढ़ सम्बन्ध नहीं रखना। तीन लिंग–सुश्रुषा, धर्मराग और वैयावच्च में दत्तचित्त हो। दश प्रकार का विनय अरिहंत, सिद्ध, चैत्य श्रुत, धर्म, साधु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवचन और दर्शन। तीन शुद्धि—जिन भगवन्त, जिन धर्म और सद्गुण। पांच दूषण--शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, कुदृष्टि प्रशंसा, कुदृष्टि परिचय। पांच भूषण--जिनमत में दृढ चित्त, जिन शासन प्रभावना, तीर्थ सेवा, जिनमत स्थिरता, जिनमत भक्ति। पांच लक्षण–शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्तिकता। आठ प्रभाविक--प्रवचन व्याख्यान वाचस्पति धर्म कथाकार, वादी वैताल, नैमित्तक, तपस्वी, विद्यावान सिद्ध पुरुष और कवित्व शक्ति वाला। छे यतना--परतीर्थि को वन्दन, नमस्कार, आलाप, संलाप, भोजन व्यवहार, दान गंधादि अर्पणादि। छे आगार–राज आज्ञा से, समुदायिक आज्ञा से, बलवान की आज्ञा से, देवाज्ञा से, आजीविका के हेतु और महान पुरुष के आग्रह से। छे भावना--समकित चारित्र धर्म का मूल्य है, द्वार है, स्तंभ है, आधार है, भाजन है और निधान है। छे स्थानक–जीव है, जीव नित्य है, जीव कर्म करता है, किये हुए कर्म भोगता है, मोक्ष स्थान है और मोक्ष प्राप्ति के उपाय हैं। इस प्रकार से भेद भेदानुभेद की जानकारी करना चाहिए।

॥ ढाल का अर्थ ॥

प्रकृतियों के क्षय हो जाने से अथवा उपशम से समता-संवेग

आदि गुण प्रगट होते हैं, वही सम्यग्दर्शन और आत्मा समझना चाहिये। केवल समकिती नाम मात्र के धारण करने से सफलता प्राप्त नहीं होती, साथ ही गुण होने चाहिये, तब कार्य सिद्धि होता है।

॥ अंत काव्यार्थ ॥

द्रव्यास्तिकाय—जो छः बताये गये हैं (१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) पुद्गलास्तिकाय (५) जीवास्तिकाय (६) कालास्तिकाय। षड्द्रव्य में श्रद्धा रखना यह गुण सर्वगुण प्रधान सम्यग्दर्शन होता है. जिस प्रकार रसायण से व्याधि दूर होती है तदनुसार कदाग्रह रूप व्याधि सम्यग्दर्शन से दूर हो जाती है।

इति सम्यग्दर्शन पूजार्थ समाप्त

॥ अथ सप्तम सम्यग्ज्ञान पदपूजा ॥

॥ आद्य काव्य इन्द्रवज्रा वृत्तम ॥

अन्नाण संमोह तमो हरस्स,नमो नमो नाण दिवायरस्स।

॥ भुजंगप्रयात वृत्तम् ॥

होये जेह थी ज्ञान शुद्ध प्रबोधे,
यथावर्णनासे विचित्राव बोधे।

तेणे जाणिये वस्तु षड् द्रव्यभावा,

न होवे वित्तथा निजेच्छा स्वभावा।१।

होय पंचमत्यादि सुज्ञान भेदे,

गुरुपास्ति थी योग्यता तेह वेदे।

वलो ज्ञेय हेय उपादेय रूपे,

लहे च्त्तिमां जेम ध्वांत प्रदीपे ॥२॥

॥ ढाल उल्लाला की देशी ॥

भव्य नमो गुण ज्ञान ने, स्वपर प्रकाशक भावेजी।
परजाय धर्म अनंतता, भेदाभेद स्वभावेजी।
भ० ॥१॥

जे मुख्य परिणति सकल ज्ञायक, बोध भाव विलच्छना,
मति आदि पंच प्रकार निर्मल, सिद्धसाधन लच्छना।
स्याद्वाद संगी तत्त्वरंगी, प्रथम भेदाभेदता।
सविकल्पने अविकल्प वस्तु, सकल संशय छेदता।२।

॥ पूजा-ढाल-श्रीपालरास की देशी ॥

भक्ष्याभक्ष्य न जे विण लहिये पेय अपेय विचार।

कृत्य अकृत्य न जे विण लहिए, ज्ञान ते सकल आधार रे।
भ० ॥१॥

प्रथम ज्ञान ने पछो अहिंसा, श्री सिद्धान्ते भाख्युं।
ज्ञानने वंदो ज्ञान म निंदो, ज्ञानी ए शिव सुख चाख्युं रे।
भ० ॥२॥

सकल क्रियानुं मूल जे श्रद्धा, तेहनुं मूल जे कहिये।
तेह ज्ञान नित नित वंदीजे ते विण कहो केम रहिए रे।
भ० ॥३॥

पंच ज्ञान मांहि जेह सदागम स्वपर प्रकाशक जेह।
दोपक परे त्रिभवन उपकारी वलो जेम रवि शशि मेह रे
भ० ॥४॥

लोक ऊर्ध्व अधो तिर्यग् ज्योतिष वैमानिक ने सिद्ध।
लोकालोक प्रगट सवि जेह थी, तेह ज्ञाने मुज शुद्धि रे।
भ० ॥५॥

॥ ढाल ॥

ज्ञानावरणो जे कर्म छे, क्षय उपशम तस थाय रे।
तो हुए तेहिज आतमा, ज्ञान अबोधता जाय रे।
वीर ॥१॥

॥ अंत काव्यम् ॥

नाणं पहाणं नय चक्क सिद्धं,
तत्त्वा बोहिक्कमयं पसिद्धं ।
धरेह चित्तावसए फुरंतं,
माणिक्कदीवव्व तमो हरंतं ॥१॥

विमल केवल भासन-भास्करं (श्लोक बोलना)

॥ सातवीं पूजा भावार्थ ॥

॥ आद्य काव्यार्थ ॥

अज्ञान और मोह रूप अंधकार को दूर करने में सूर्य के समान ज्ञान को बारंबार वन्दन नमस्कार हो।

॥ वृत्तार्थ ॥

जिस प्रकार अलग अलग प्रकार का बोध प्राप्त होने से अज्ञान के आवरण दूर होते हैं, और शुद्ध प्रबोध अर्थात् सम्यग्-दर्शन सहित ज्ञान हो तो वह शुद्ध प्रबोध गिना जाता है, अन्यथा अज्ञान रूप ही समझा जाता है, जब शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है

तव षड् द्रव्य पदार्थों का स्वरुप समझ में आता है और वगैर ज्ञान के वस्तु का स्वरूप कथन किया जाय तो वह वितंडावाद अर्थात् विना समझा हुवा तर्कवाद जो पद्धति रहित होता है और ऐसा मनुष्य अपनी मति कल्पना से स्वच्छंदतापूर्वक सूत्र का कथन करे तो वह ज्ञान रहित समझना चाहिये ॥१॥

ज्ञान के पाँच भेद बताये गये हैं (१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मनपर्यवज्ञान और (५) केवलज्ञान इन पांचों ज्ञान का भेद गुरुजन की सेवा करने से प्राप्त हो सकता है और जिस प्रकार से दीपक द्वारा अंधकार नष्ट हो जाता है, तदनुसार ज्ञेय, हेय और उपादेय अर्थात् जानने योग्य वस्तु को जानना, त्याग करने योग्य हो उसका त्याग करना, और अंगीकार करने योग्य हो उसे स्वीकार करना इस तरह तीनों भेद समझने में निपुण हो तो जड़ता स्वयमेव अलग हो जाती है और ज्ञान प्राप्ति होती है ।

॥ उल्लाला ढ़ाल का भावार्थ ॥

हे भव्यात्माओ ! ज्ञान रूप गुण को नमस्कार करो। ऐसे ज्ञान का स्वभाव स्वयं व अन्य के लिये प्रकाश करने वाला है, जिसमें पर्याय धर्मों का अनन्तपन है अर्थात् आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं और प्रत्येक प्रदेश के साथ अनन्त ज्ञान के पर्याय जानने की शक्ति का समावेश होता है जिससे भेद व अभेद स्वभाव

वाला समझना चाहिये। ज्ञान द्वारा जड़ और चेतन का भेद समझ में आ सकता है और धीरे धीरे वह उच्च कोटि तक पहुँच जाता है, तब आत्मा अपने रूप को देखती है, जब इस प्रकार आत्मदर्शन हो जाता है, तो फिर निश्चय समझ लो कि आत्मा में और ज्ञान में कोई भेद नहीं है, ज्ञान है वही आत्मा है और आत्मा है वही ज्ञान है ॥१॥ ज्ञान का मुख्य स्वभाव समस्त वस्तु की जानकारी कराने का है और जानपणेरूप भाव ज्ञान का लक्षण है जिसके द्वारा स्याद्वाद का प्रतिपादन होता है, तत्त्व से रंगायमान होता है, जो प्रथम भेद और वाद में अभेद बताने वाला है, विकल्प वाले और अविकल्प पदार्थों को जानने वाला है, जो सर्व प्रकार की शंकाओं का निवारण कर सकता है ॥२॥

॥ पूजा ढाल का भावार्थ ॥

ज्ञान की प्राप्ति किये विना खाने योग्य और त्यागने योग्य, पीने योग्य और नहीं पीने योग्य, करने योग्य और नहीं करने योग्य पदार्थों का विवेक प्राप्त नहीं हो सकता, शास्त्रोक्त रीति से अभक्ष भक्षण, अपेय पान और अकार्य का करना निषेध किया गया है, जिसका स्वरूप ज्ञान विना समझ में नहीं आ सकता और ज्ञान हो जाने यानि समझ में आ जाने के बाद वैसे ही कृत्य करता रहे तो समझलो कि वह वास्तविक ज्ञान नहीं है किन्तु अज्ञान है। इसलिये ज्ञान तो समस्त लोगों के आधारभूत समझो ॥१॥

इसीलिये भगवंत परमात्मा ने सिद्धान्त में प्रथम ज्ञान और बाद में अहिंसा का पाठ कहा है और स्पष्ट बताया है, कि बिना ज्ञान के दया का पालन नहीं हो सकता। जड़ चेतन का विवेक व वास्तविक अहिंसा किसको कहते हैं वह सब ज्ञान द्वारा जानी जाती है, इसीलिये प्रथम ज्ञान और बाद में अहिंसा का कथन किया गया है अतः इस प्रकार के ज्ञान को नमस्कार करो, ज्ञान की अवगणना कभी मत करना, जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है उन्हीं ज्ञानी पुरुषों ने मोक्ष सुख पाया है।

फिर कहा है कि तमाम क्रियाओं का मूल श्रद्धा है, और श्रद्धा का मूल ज्ञान बताया है अतः इस तरह के ज्ञान को नित्य वंदन करो और समझलो कि ऐसे ज्ञान बिना किस तरह से रह सकते हैं ? ॥३॥ पांच प्रकार के ज्ञान में जो सदागम हैं वह निज को और अन्य को भी प्रकाशित करने वाला है, दीपक की तरह तीनों भवन में उपकार करने योग्य है, जिस तरह सूर्य, चन्द्र और वर्षा संसार में उपकारी समझे जाते हैं उसी प्रकार ज्ञान को भी समझना चाहिये।

सूर्य अपने प्रकाश से संसार के पदार्थों का दर्शन कराता है चन्द्र शीतलता देकर रात्रि में पदार्थों का उज्ज्वल दर्शन कराता है, वर्षा जल द्वारा वर्षादि वनस्पति को नवपल्लवित करती हैं और अनाज से पृथ्वी को रसमय बनाती है उसी तरह ज्ञान से राग आदि का समूल नाश होता है, जीवन में प्रकाश होता है,

जिससे मोक्ष की अभिलाषा जागृत होती है, स्वपर की पहिचान होती है और जन्म जरा मृत्यु रूप व्याधि से निर्भय हो जाते हैं ॥४॥

उर्ध्वलोक-अधोलोक, तिर्यंग-लोक, ज्योतिष-लोक वैमानिक और सिद्ध लोक आदि लोक और अलोक जिसके द्वारा जाने जाते हैं ऐसा ज्ञान हे भगवंत मुझे शुद्ध स्वरूप में प्राप्त हो ॥५॥

॥ ढाल का अर्थ ॥

ज्ञानावरणीय रूप कर्मों का क्षयोपशम अथवा क्षय हो जाता है तब आत्मा ज्ञानरूप होती है और ज्ञान से अज्ञानता दूर हो जाती है ॥१॥

॥ अंत काव्य का भावार्थ ॥

नय चक्र द्वारा सिद्ध किया हुवा ज्ञान ही मुख्य माना जाता है। तत्त्व के बोध से प्रसिद्ध है ऐसे रत्न दीप की तरह अंधकार को दूर करने वाले तेजस्वी ज्ञान को चित्तरूप महल में निवास कराओ।

॥ अथ अष्टम् चारित्र पद पूजा ॥

॥ आद्य काव्य—इन्द्रवज्रावृत्तम ॥

आराहिअखंडोय सविकअस्स,

नमो नमो संजम वोरिअस्स ॥

इसीलिये भगवंत परमात्मा ने सिद्धान्त में प्रथम ज्ञान और बाद में अहिंसा का पाठ कहा है और स्पष्ट बताया है, कि बिना ज्ञान के दया का पालन नहीं हो सकता। जड़ चेतन का विवेक व वास्तविक अहिंसा किसको कहते हैं वह सब ज्ञान द्वारा जानी जाती है, इसीलिये प्रथम ज्ञान और बाद में अहिंसा का कथन किया गया है अतः इस प्रकार के ज्ञान को नमस्कार करो, ज्ञान की अवगणना कभी मत करना, जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है उन्हीं ज्ञानी पुरुषों ने मोक्ष सुख पाया है।

फिर कहा है कि तमाम क्रियाओं का मूल श्रद्धा है, और श्रद्धा का मूल ज्ञान बताया है अतः इस तरह के ज्ञान को नित्य वंदन करो और समझलो कि ऐसे ज्ञान बिना किस तरह से रह सकते हैं ? ॥३॥ पांच प्रकार के ज्ञान में जो सदागम हैं वह निज को और अन्य को भी प्रकाशित करने वाला है, दीपक की तरह तीनों भवन में उपकार करने योग्य है, जिस तरह सूर्य, चन्द्र और वर्षा संसार में उपकारी समझे जाते हैं उसी प्रकार ज्ञान को भी समझना चाहिये।

सूर्य अपने प्रकाश से संसार के पदार्थों का दर्शन कराता है चन्द्र शीतलता देकर रात्रि में पदार्थों का उज्ज्वल दर्शन कराता है, वर्षा जल द्वारा वर्षादि वनस्पति को नवपल्लवित करती है और अनाज से पृथ्वी को रसमय बनाती है उसी तरह ज्ञान से राग आदि का समूल नाश होता है, जीवन में प्रकाश होता है,

जिससे मोक्ष की अभिलाषा जागृत होती है, स्वपर की पहिचान होती है और जन्म जरा मृत्यु रूप व्याधि से निर्भय हो जाते हैं ॥४॥

उर्ध्वलोक-अधोलोक, तिर्यंग-लोक, ज्योतिष-लोक वैमानिक और सिद्ध लोक आदि लोक और अलोक जिसके द्वारा जाने जाते हैं ऐसा ज्ञान हे भगवंत मुझे शुद्ध स्वरूप में प्राप्त हो ॥५॥

॥ ढाल का अर्थ ॥

ज्ञानावरणीय रूप कर्मों का क्षयोपशम अथवा क्षय हो जाता है तब आत्मा ज्ञानरूप होती है और ज्ञान से अज्ञानता दूर हो जाती है ॥१॥

॥ अंत काव्य का भावार्थ ॥

नय चक्र द्वारा सिद्ध किया हुवा ज्ञान ही मुख्य माना जाता है। तत्त्व के बोध से प्रसिद्ध है ऐसे रत्न दीप की तरह अंधकार को दूर करने वाले तेजस्वी ज्ञान को चित्तरूप महल में निवास कराओ।

॥ अथ अष्टम् चारित्र पद पूजा ॥

॥ आद्य काव्य—इन्द्रवज्रावृत्तम ॥

आराहिअखंडीय सक्किअस्स,

नमो नमो संजम वीरिअस्स ॥

॥ भुजंग प्रयातवृत्तम् ॥

वली ज्ञान फल चरण धरिये सुरंगे, निराशंसताद्वार रोध प्रसंगे ॥ भवांभोधि संतारणे यान तुल्यँ, धरुं तेह चारित्र अप्राप्त मूल्यं ॥१॥ होये जास महिमा थको रंक राजा, वली द्वादशांगी भणी होय ताजा ॥ वलीपापरूपोपि निः पाप थाय, थई सिद्ध ते कर्म ने पारजाय ॥२॥

॥ ढाल-उल्लाला की देशी ॥

चारित्र गुण वली वली नमो, तत्त्वरमण जसु मूलोजी,
पर रमणीय पणुंटले, सकल सिद्ध अनुकूलोजी ॥१॥
प्रतिकूलआश्रवत्याग संयम, तत्त्व थिरता दममयी ॥
शुचि परम खांति मुत्ति दशपद पंच संवर उपचई ॥
सामायिकादिक भेद धर्मे, यथाख्याते पूर्णता
अकषाय अकलुष अमल उज्जवल कामकश्मल चूर्णता
॥२॥

॥ पूजा-ढ़ाल-श्रीपालरासजी की देशी ॥

देशविरति ने सर्व विरतिजे, गृही यति ने अभिराम ॥
ते चारित्र जगत् जयवंतु, कीजे तास प्रणाम रे ॥
भ० ॥१॥

तृण परे जे षटखंड सुख छंडी, चक्रवर्ती पणवरियो
ते चारित्र अक्षय सुख कारण ते मैं मनमांहि धरियोरे ॥
भ० ॥२॥

हुआ रांक पण जे आदरो, पूजित ईंद नरिंद
अशरण शरण चरण ते वन्दूं पूर्युंज्ञान आनन्देरे ॥
भ० ॥३॥

बार मास पर्याय जेहने, अनुत्तर सुख अतिक्रमिये
शुक्ल शुक्ल अभिजात्य ते उपरे ते चारित्र ने नमियेरे ॥
भ० ॥४॥

चय ते आठ करमनो संचय, रिक्त करे जे तेह
चारित्र नाम निरुत्तो भाख्युं ते वन्दूं गुण गेहरे ॥
भ० ॥५॥

॥ ढाल ॥

जाण चारित्र ते आतमा, निजस्वभावमां रमतो रे ॥
लेश्या शुद्ध अलंकर्यो, मोह वने नहीं भमतो रे॥
वीर ॥१॥

॥ अंत काव्य इन्द्रवजा वृत्तम ॥

सु संवरं मोह निरोधसारं, पंचप्पयारंविगमाइयारं
मूलोत्तराणेग गुणं पवित्तं, पालेह निच्चं पिहुसरचरित्रं ॥
विमल केवल भासन भास्करं, जगति जंतु महोदय कारणं
जिनवरं बहुमान जलौघत:शुचिमन: स्वपयामि
विशुद्धये ॥

॥ इति ॥

॥ आठवीं पूजा का भावार्थ ॥

॥ आद्य काव्यार्थ ॥

दोप रहित सदाचार का पालन किया है ऐसे चारित्र वल को वारंवार नमस्कार हो ।

॥ वृत्तार्थ ॥

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग यह आश्रव आत्मा के साथ कर्म का मिलान करते हैं, ऐसे इन चार द्वारों को वंद करने का समय आता है तब ज्ञान के फलरूप विरति चारित्र अनुपम रंग पूर्वक धारण करें तो यह भवरूप समुद्र को तैरने में जहाज के समान काम देता है अतः ऐसे अमूल्य चारित्र को धारण करना चाहिये ॥१॥

जिसके प्रताप से रंक पुरुष भी राजा हो सकता है और द्वादशांगी बारह अंग का अभ्यास करके आत्म स्वरूप को ताजा दृढ़ बनाते हैं, जिसके प्रसाद से पापी पुरुष पाप रहित हो जाता है और कर्मका छेद करके सिद्ध पद पा सकता है ॥२॥

॥ उल्लाला ढाल भावार्थ ॥

वारंवार चारित्र गुण को नमस्कार करो। जिसका [illegible] तत्त्वरमणता है। जिसके कारण परवस्तु में रमण [illegible] स्वभाव दूर हो जाता है, और सर्व प्रकार की सिद्धि [illegible] होती हैं। सिद्धियाँ वैसे दो प्रकार की बताई [illegible] सिद्धि जो पुण्य संचय से ऐश्वर्य प्राप्ति आदि [illegible] मोक्ष प्राप्ति समझना चाहिये।

चारित्र पालन के दस प्रकार बताये गये जिनको धारण करने से दशगुण वाला कहलाता है। ऐसे दशगुण वाला चारित्र जो संवर के मिलने से संवर कहते हैं कर्म उपार्जन को रोकने के साधन जो सत्तावन प्रकार के बताए गये हैं उन पर प्रतिबंध करने से संवर पैदा होता है। पाँच समिति, तीन गुप्ति, बाइस परिषह, दस यतिधर्म, बारह भावना और पाँच प्रकार का चारित्र नवतत्त्व संवर, ऐसे संवर सहित चारित्र पालन यथाख्यात पूर्णता तक के पाँच भेद वाला चार कषायों रहित, क्लेश रहित निर्मल उज्जवल और कामरूप मोह का चूरण करने के स्वभाववाला ऐसा चारित्र है, जिसका पालन होता हो।

॥ ढाल भावार्थ ॥

देश विरति और सर्व विरतिरूप अनुक्रम से गृहस्थ व यति के योग्य है, ऐसा चारित्र जगत में जयवंत है अतः ऐसे चारित्र को प्रणाम करो ॥१॥ जिन्होने छः खंडों के सुखों को तृणकी तरह समझ कर जिनका त्याग कर दिया है और साररूप चारित्र को समझ कर चक्रवर्त्ती ने भी जिसको अंगीकार किया है, ऐसा चारित्र अक्षय सुख का कारण है। जिसको मैंने मनेच्छा पूर्वक स्वीकार किया है ॥२॥ रांक-गरीब-भिखारी-मनुष्य भी इसको ग्रहण कर लेता है तो उसको चक्रवर्त्ती व इन्द्र भी पूजते-नमस्कार करते हैं। ऐसा यह चारित्र निराधार को भी आधारभूत है। ऐसे ज्ञानानंद से परिपूर्ण चारित्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

ऐसे चारित्र की पालना जिसने बारह महीने तक करली हो तो अनुत्तर विमान के सुखों का भी उल्लंघन कर लेता है और उज्जवल उज्जवल होते तरतमपन होने से चारित्र को नमस्कार करते हैं. अर्थात चारित्र के असंख्य स्थान होने से उज्वलता में तरतमपन हो सकता है जिससे सर्वोपरी उज्वलता-सिद्धावस्था प्राप्त कर सकता है ॥४॥ चय अर्थात् आठ प्रकार के कर्मों का संचय जिसको खाली करदे अर्थात् निकालदे ऐसा चारित्र नाम निर्युक्ति में बताया है जो गुण का गृह-अर्थात् भंडार होने से वन्दन करता हूँ ॥५॥

॥ ढाल का अर्थ ॥

निज स्वभाव में रमण करते अर्थात् शुक्ललेश्या जोकि आत्मा का स्वभाव है उसमें रत रहकर, शुद्ध लेश्या से सुशोभित होकर मोहरूपी वनखंड में नहीं भटकती हों ऐसी आत्मा को ही चारित्र समझना चाहिये ॥१॥

॥ अंत का काव्यार्थ ॥

सुन्दर संवर वाला मोह को रोकने में प्रधान पाँच भेद वाला (१) सामायिक (२) छेदोपस्थापनीय (३) परिहार-विशुद्धि (४) सूक्ष्म संपराय (५) यथाख्यात चारित्र जो अतिचार रहित हो मूल उत्तर गुण-वाला ऐसे पवित्र चारित्र का निरंतर पालन करो।

समाप्त

॥ अथ श्री नवमी तप पद पूजा ॥

॥ आद्य काव्यम्-इन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥

कम्मद्दुमोम्मूलण कुंजरस्स,
नमो नमो तिव्वतवो भरस्स

॥ मालिनी वृत्तम ॥

इय नवपयसिद्धं, लद्धिविज्झा समिद्धं
पयडिय सरवग्गं, ह्रीँ तिरेहा समग्गं ॥
दिसवइ सुरसारं, खोणि पीढ़ावयारं
तिजय विजयचक्कं, सिद्धचक्कं नमामि ॥१॥

॥ भुजगं प्रयात् वृत्तम ॥

त्रिकालिकपणे कर्म कषाय टाले ।
निकाचित पणे, बाँधिया तेह बाले ॥१॥
कह्यूं तेह तप बाह्य अंतर दुभेदे ।
क्षमा युक्त निर्हेत दुर्ध्यान छेदे ॥२॥

होये जास महिमा थकी लब्धि सिद्धि,
अवांचछकपणे कर्म आवरण शुद्धि ॥
तपो तह तप जे महानंद हेते,
होय सिद्धि सीमंतिनी जिम संकेते ॥३॥
इस्या नवपद ध्यान ने जेह ध्यावे,
सदानंद चिद्रूपता तेह पावे ॥
वली ज्ञान विमलादि गुण रत्नधामा,
नमुं ते सदा सिद्ध चक्र प्रधाना ॥४॥

॥ मालिनी वृत्तम ॥

इम नवपद ध्यावे, परम आनन्द पावे,
नवमे भव शिव जावे देव नरभव पावे ॥
ज्ञान विमल गुण गावे, सिद्ध चक्र प्रभावे,
सवि दुरित समावे, विश्व जयकार पावे ॥१॥

॥ ढाल उल्लाला की देशी ॥

इच्छारोधन तपनमो, बाह्य अभ्यंतर भेदेजी ।
आतम सत्ता एकता, पर परिणति उच्छेदेजी ॥१॥

उच्छेद कर्म अनादि संतति जेह सिद्ध पणु वरे।
योग संगे आहार टाली भाव अक्रियता करे॥
अंतर महूरत तत्त्व साधे, सर्व संवरता करी।
निज आत्म सत्ता प्रगट भावे, करी तप गुण आदरो।२।

॥ ढाल ॥

एम नवपद गुणं मंडलं, चऊ निक्षेप प्रमाणे जो।
सात नये जे आदरे, सम्यग् ज्ञानने जाणे जो॥
निद्धार सेती गुणी गुणनो, करे जे बहुमान ए।
तसु करण ईहा तत्त्व रमण, थाय निर्मल ध्यान ए॥
एम शुद्ध सत्ता भल्यो चेतन सकल सिद्धि अनुसरे।
अक्षय अनंत महंत चिद्घन परम आनंदता वरे॥

॥ अथ कलश ॥

ईय सयल सुख कर गुण पुरंदर सिद्ध चक्र पदावली।
सविलद्धि विद्या सिद्धि मंदिर, भविक पूजो मनरुली॥
उवज्झाय वर श्री राज सागर, ज्ञान धर्म सुराजता।
गुरु दीपचंद सु चरण सेवक देवचंद सुशोभता॥

॥ पूजा ढ़ाल श्रीपालरास की देशी ॥

जाणंता त्रिहुं ज्ञाने संयुत ते भवि मुक्ति जिणंद ॥
जेह आदरे कर्म खपेवा, तेँ तप शिवतरु कंदरे ॥
भ० ॥१॥

कर्म निकाचित पण क्षय जावे, क्षमा सहित जे करतां ॥
ते तप नमिये जेह दीपावे, जिन शासन उजमंतां रे ॥
भ० ॥२॥

आमोसहि पमुहा बहु लब्धि होवे जास प्रभावे ॥
अष्ट महासिद्धि नव निधि प्रगटे, नमिये ते पर भावरे ॥
भ० ॥३॥

फल शिव सुख महोटुं सुर नरवर संपत्ति जेहनुँ फूल ॥
ते तप सुरतरु सरिखो वंदुं, सम मकरंद अमूल रे ॥
भ० ॥४॥

सर्व मंगलमां पेहलुं मंगल वरणवीए जे ग्रंथे ॥
ते तप पद त्रिहुंकाल नमी जे वर सहाय शिवपंथे रे ॥
भ० ॥५॥

एम नवपद थुणतो तिहां लीनो, हुवो तन्मय श्रीपाल ॥
सुजस विलासे चोथे खंडे, एह अग्यारमी ढ़ाल रे ॥
भ० ॥६॥

॥ ढ़ाल ॥

इच्छारोधे संवरी, परिणति समता योगे रे ॥
तप ते एहिज आतमा, वर्ते निजगुण भोगे रे ॥
वीर ॥१॥

आगम नोआगम तणो भाव न जाणो साचो रे ॥
आतम भावे थिर हो जो, पर भावे मत रोचो रे ॥
वीर ॥२॥

अष्ट सकल समृद्धिनी, घटमांहि ऋद्धि दाखी रे ॥
तेम नवपद ऋद्धि ज़ाणजो, आतमराम छे साखी रे ॥
वीर ॥३॥

योग असंख्य जे जिन कह्या, नवपद मुख्य ते जाणो रे
एह तणे अवलंब नें, आतम ध्यान प्रमाणो रे ॥
वीर ॥४॥

ढ़ाल बारमी एहवी, चोथे खंडे पूरी रे ॥
वाणी वाचक जस तणी, कोई नये न अधूरो रे ॥
वीर ॥५॥

॥ अंत्य काव्यम् ॥

वज्झँ तहाभितर भेय मेयं,
कयापदुज्झेय कुकुम्म भेयं ॥
दुख्खख्खपथ्थं कयपावनासं,
तवं तवेहागमियं विरासं ॥१॥

॥ अथ सर्वांग काव्यम् ॥

विमल केवल भासन भास्करं,
जगति जंतु महोदय कारणं ॥
जिनवरं बहुमान जलौघतः,
शुचिमनः स्नपयामि विशुद्धये ॥१॥

॥ काव्यम् ॥

स्नात्र करतां जगद् गुरु शरीरे
सकल देवे विमल कलश नीरे ।

आपणां कर्म मल दूर कीधां,
तेणे ते विबुध ग्रंथे प्रसिद्धा ॥२॥
हर्षधरी अप्सरावृन्द आवे,
स्नात्रकारी एम आशीष पावे।
जिहां लगी सुर गिरि जंबू दीवो,
अमतणानाथ देवाधि देवो ॥३॥

ॐ ह्रीँ श्रीँ परम पुरुषाय परमेश्वराय, जन्मजरामृत्यु निवारणाय, श्रीमते नवपदाय जलादिकं यजामहे स्वाहा।

॥ नवमी तप पद पूजा का भावार्थ ॥

॥ आद्य काव्यार्थ ॥

कर्मरूपी वृक्ष को उखाड़ने में हाथी के समान तीव्र तप पद को बारंबार नमस्कार हो।

॥ मालीनिवृत्तार्थ ॥

नव पद लब्धियां और विद्या देवियों से समृद्ध हैं। स्वर और व्यंजन वर्गो यंत्र में प्रत्यक्ष हैं, ह्रींकार की तीन रेखाएँ जिसके वेष्टित है, दश दिग्पाल और शासन देव देवीयों के नाम से शोभित है, ऐसे यंत्र का पृथ्वी तल उपर आलेखन हो सकता

है, यह यंत्र तीन लोक का विजय पाने में चक्र के समान है, ऐसे सिद्धचक्र को मैं नयस्कार करता हूँ ॥१॥

॥ वृत्तार्थ ॥

यह यंत्र तीन काल में उपार्जन किये हुए कर्म और कषायों को दूर करता है, और निकाचित कर्मों को जला देता है। ऐसे तप पद के दो भेद हैं ऐक वाह्य दूसरा अभयंतर—तप क्षमा सहित वांछित फल पाने की इच्छा रहित किया हो तो अशुभ ध्यान का छेद हो सकता है ॥२॥

तप की महिमा से लब्धियाँ प्राप्त होती है. तप इच्छा रहित नियाणा अर्थात् बेदला रहित आराधन किया हो तो कर्मविरण की शुद्धि होती है, इसलिए मोक्ष प्राप्त के हेतु तप आराधन करना चाहिए। तपाराधन से मुक्ति वधु से भेट होती है ॥३॥

नवपद का जो ध्यान करते हैं वह सच्चिदानंद स्वरूप को पाते हैं, ऐसे निर्मल ज्ञान गुण रत्न के भंडार समान सिद्धचक्र को में नमस्कार करता हूं। ॥४॥

॥ मालिनी वृत्तार्थ ॥

इस प्रकार नवपद का जो ध्यान करते हैं, उनको उत्कृष्ट आनंद की प्राप्ति होती है, और आराधक पुरुष नवभव में मोक्ष

जाते हैं, और तप पद का उद्यापन-उजमणा कराने से जिनशासन की प्रभावना होती है, अतः तप पद को नमन करना चाहिए ॥२॥

तप के प्रभाव से अमौषधिरूप अनेक लब्धियां प्रगट होती है, आठ प्रकार की सिद्धियां और नवनिधान प्रगट होते हैं। अतः ऐसे तप पद को भव सहित नमन वन्दन करना चाहिए ॥३॥

तप के द्वारा मोक्ष फल मिलता है, इन्द्र और चक्रवर्ति की की सम्पतिरूप फल प्राप्ति होती है, समतारूप अमूल्य जिसका पुष्प रस है. ऐसे कल्पवृक्ष समान तप पद को वन्दन करता हूं ॥४॥

सर्व प्रकार के मंगल में सर्व प्रथम मंगलरूप तप पद का वर्णन आगम शास्त्रों में ग्रंथों में किया है, मोक्ष प्राप्ति में सहायक तप पद को तीनों काव्य में वन्दन नमन करना चाहिए ॥५॥

इस प्रकार से नवपद की स्तवना—आराधना करने से श्रीपाल महाराजा तन्मयतापूर्वक लीन हुए थे, इस तरह सुन्दर यश के विलास वाले चोथे खंड की अग्यारपी ढाल पूर्ण हुए ॥६॥

॥ ढालार्थ ॥

इच्छाओं का निरोध करके संवर भावना में लीन होकर मन वचन काया के योगों की एकाग्रता से समता गुण में रमण करके स्वगुणों के अनुभव में आत्मा रमण करता है उसी का नाम तप है ॥१॥

आगम और नोआगमों के रहस्य को सत्य समझ और आत्मस्वरूप में स्थिर रह कर पौद्गलिक भावों में तल्लीन हो जाना चाहिए ॥२॥

आत्मा में आठ प्रकार की सिद्धियों की संपत्ति का निवास है, तदनुसार नवपद की सम्पत्ति भी है जिस का साक्षी निज आत्मा है ॥३॥

मुक्ति प्राप्त करने के असंख्य योग जिनेश्वर भगवान ने कथन किये हैं. जिनमें नवपद मुख्य है, जिसके आलम्बन से आत्म ध्यान पूर्ण होता है ॥४॥

चौथे खंड की वारहवीं ढाल सम्पूर्ण हुई श्री महामहोपाध्याय यशोविजयजी महाराज ने कहा कि यह जिनवाणी किसी भी नय से अपूर्ण नहीं हैं ॥५॥

॥ अंत काव्यार्थ ॥

वाह्य और अभ्यंतर भेद वाले दुर्जय पापकर्म का छेद करने वाला दुःख का क्षय और पापकर्म का नाश करने वाला तप पद को आशा रहित भाव से आराधन करो ॥

॥ सर्वाङ्ग काव्यार्थ ॥

निर्मल केवल ज्ञान से प्रकाश करते सूर्यरूप जगत में,

आत्माओं की उन्नति में कारणभूत श्री जिनेश्वर भगवान को मैं पवित्र मन से विशुद्धि के लिए बहुमान पूर्वक जल समूह से अभिषेक करता हूं ॥१॥

जगत के गुरू जिनेश्वर भगवान के शरीर पर निर्मल कलश द्वारा सर्व देवोंने स्नात्रकर के निज कर्ममल को नष्ट किया जिस से "विबुध" तुल्य ग्रन्थों में प्रसिद्धि पाये ॥२॥

हर्ष सहित अप्सराओं का समूह आकर स्नात्र करावे. आशीस प्रार्थना करते हैं कि जहां तक मेरूपर्वत और जम्बूद्वीप कायम रहे वहां तक हमारे नाथ! देवाधिदेव! जिनेश्वर भगवान हों ॥३॥

॥ सम्पूर्ण ॥